शिष्टाचार

कंचनलता सब्बरवाल

सत्स

शिष्टाचार

बालकों के लिए आचार-संबंधी
उपयोगी विचार तथा सूचनाएं

कंचनलता सब्बरवाल

१९६४
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशकीय

इस पुस्तक में बालकों तथा युवकों के आचार-विचार के विषय में उपयोगी बातें बताई गई हैं। बड़े होने पर बच्चे ज़िम्मेदार नागरिक बनें, इसके लिए आवश्यक है कि उनका जीवन आरम्भ से ही अनुशासनबद्ध हो तथा वे उन नियमों को जानें और उनका पालन करें, जिनके बिना हमारा वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन सुचारु रूप से चलना असम्भव है।

पुस्तक की लेखिका अनुभवी शिक्षा-शास्त्री हैं और विद्यार्थियों के मनोविज्ञान का उन्हें अच्छा ज्ञान है। इस छोटी-सी पुस्तक में उन्होंने बालकों की व्यवहार-सम्बन्धी लगभग सभी महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला है।

सामान्य शिष्टाचार की हम सबके जीवन में आवश्यकता होती है और इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक की उपयोगिता बालकों और युवकों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि जो भी इसे पढ़ेगा, उसीको लाभ होगा।

चौथा संस्करण

प्रस्तुत पुस्तक का चौथा संस्करण उपस्थित करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। आज की बहुत बड़ी समस्या हमारे युवकों में, जिनके कंधों पर आगे चलकर देश का भार आयगा, अनुशासन उत्पन्न करना और उस भारी जिम्मेदारी के योग्य बनाना है। इस दिशा में यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

हम चाहते हैं कि यह महत्वपूर्ण पुस्तक शिक्षा-संस्थाओं में प्रविष्ट हो, जिससे अधिक-से-अधिक बालक-बालिकाएं लाभ उठा सकें।

—मंत्री

भूमिका

मानव वैसे तो स्वभाव से ही समाज-प्रिय जीव है, किन्तु वह अपने समाज-प्रिय होने के संस्कार का विकास भी धीरे-धीरे ही कर सका है। सभ्यता के आदि युग में भले ही मानव एकाकी रहा हो, किन्तु सम्भवत: उस समय भी वह एकदम एकाकी नहीं रहा होगा। परिवार की आनन्द-दायिनी चहारदीवारी उसे घेरे नहीं होगी, फिर भी समूह और उसके अधकचरे नियम उसके साथ रहे ही होंगे। यह वह युग था जब मानव-समाज एक स्थान से दूसरे स्थान पर शिकार करता घूमता था। जीवन में स्थिरता भले ही कम रही हो, एक-दूसरे के प्रति थोड़ी-बहुत सहानुभूति की भावना अवश्य रही होगी। उस समाज के विषय में निश्चित रूप से तो कुछ कहा नहीं जा सकता है, किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उस समाज में भी परस्पर व्यवहार करने के लिए कुछ ऐसे साधारण, सर्वमान्य फिर भी अनसीखे नियम अवश्य रहे होंगे, जिनके आधार पर वह मानव-समाज चलता होगा। बहुत दिन तक मानव को इस अस्थिर, अनिश्चित जीवन में नहीं रहना पड़ा, उसने इसी बीच कृषि करना भी आरम्भ कर दिया। जीवन-निर्वाह करने के लिए शिकार का एकमात्र साधन लेकर मानव एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरलता से जा सकता था, किन्तु खेती करना आरम्भ करते ही उसे एक स्थान पर रहना पड़ा। शिकार भले ही मनुष्य एकाकी भी कर ले, किन्तु खेती करने में उसे एक-दूसरे की सहायता की भी आवश्यकता पड़ी। आगे चलकर एक-दूसरे की सहायता करना मानव-कर्तव्यों में सम्मिलित हो गया। दूसरी ओर पारिवारिक जीवन भी आरम्भ हो गया। आदि काल में पारिवारिक जीवन का आधार-स्तम्भ माता थी अथवा पिता, इस संबंध में खोज करने की इस समय हमें कुछ उतनी आवश्यकता नहीं है, फिर भी यह निश्चित है कि मानव ने रक्त-सम्बन्ध को संगठन का पहला आधार बनाया होगा। फिर एक दल अथवा समूह को लेकर उसका समाज अथवा कई एक परिवारों का समूह बना होगा।

इस प्रकार कुछेक व्यक्तियों अथवा परिवारों का दल समाज बन गया।

खेती का आविष्कार करने से पूर्व मानव की आवश्यकताएं भी सीमित थीं और फलस्वरूप उसके जीवन का, रहन-सहन का ढंग-ढांचा भी अत्यन्त सीधा-सादा था, किन्तु खेती का प्रचलन होते ही उसकी आवश्यकताएं बढ़ीं। उपजाऊ खेती के ग्राहक मानव-समूह परस्पर लड़ने-भिड़ने भी लगे। युद्ध ने मानव को अधिकाधिक खोजों और आविष्कारों की ओर आकर्षित किया और एक-दूसरे की सहायता की आवश्यकता का भी अधिकाधिक अनुभव होने लगा। ग्राम-जीवन और ग्राम-समाज ने मनुष्य को आपस में मिल-जुलकर रहना सिखाया और ज्यों-ज्यों समाज की सीमाएं विस्तृत होती गईं, मनुष्य और भी अधिक इस बात को अनुभव करने लगा कि उसे अन्य मनुष्यों के सहयोग की अत्यधिक आवश्यकता है। सहयोग की आवश्यकता ने ही सहानुभूति को जन्म दिया और सहानुभूति ने मानव को अपने पड़ौसी से व्यवहार करना सिखाया। आदिकाल से ही मानव किसी भी अवस्था में क्यों न रहा हो, वह एक-दूसरे से व्यवहार अवश्य करता रहा है और उन नियमों का भी जाने या अनजाने पालन करता रहा है।

ये नियम कब बने और किसने बनाये, यह नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि युग-युगान्तर से ये चले आ रहे हैं। मानव ने सम्भवतः अपनी आवश्यकतानुसार इनका समय-समय पर संशोधन भी किया हो, अथवा यह मानव की आवश्यकतानुसार अपने-आप ही विकसित होते गए हों। जो हो, सभ्यता के आदियुग का जंगल-जंगल घूमनेवाला मानव और आज के सभ्य युग का मोटर और वायुयान पर घूमनेवाला मानव दोनों ही इन नियमों से अवश्य परिचित हैं। व्यवहार के ये नियम अथवा शिष्टाचार सदा एक से ही रहे हों, ऐसी बात नहीं है, किन्तु इनकी आधार-भित्ति 'मानव की सहयोग की आवश्यकता' और उसका 'समाज-प्रिय जीव' होना ही है।

देश, काल, परिस्थिति और आवश्यकताओं के अनुसार इन नियमों में परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन भी होते रहते हैं। यही कारण है कि आज के सभ्य संसार में सभी देशों में आचार के नियम एक-से नहीं

दीख पड़ते हैं। किसी देश में गुरुजनों के सम्मुख नंगे सिर आना शिष्टाचार नहीं माना जाता तो किसी अन्य देश में सम्मान प्रदर्शित करने की रीति ही सिर से टोपी अथवा हैट उतारना है। अतः इन साधारण नियमों में किसी प्रकार का ऐक्य देखना उचित न होगा। एक ही देश में भी समयानुसार आचार के नियमों में परिवर्तन होता रहता है। देश की जलवायु और समाज की आर्थिक गतिविधि भी आचार के नियमों को प्रभावित करती है। फिर भी आचार के नियमों की पृष्ठभूमि तो विश्व-भर के मानव-समाज के लिए एक-सी ही है। यदि मानव समाज में रहकर भी स्वार्थी और संकुचित अथवा निज के हितों पर ही ध्यान रखनेवाला होता है तो वह न केवल अपने ही समाज को विपत्ति में डालता है, वरन् मानव-समाज के उन सभी समूहों अथवा दलों को कष्ट देता है, जिनसे उसका तनिक-सा भी सम्बन्ध होता है। अतः यह आवश्यक है कि मानव का मानव के प्रति व्यवहार एक ऐसी आधारशिला पर निर्मित, हो जोकि सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए एक हो; और यह तभी हो सकता है, जबकि मानव के साधारण अधिकारों की व्याख्या एक-सी हो।

मानव-अधिकारों की परिभाषा सर्वदा एक-सी ही होती हो, ऐसी बात नहीं है। फिर भी कुछ मानवाधिकार ऐसे भी है, जिन्हें सर्वकालीन कहा जा सकता है। मानव का जीवित रहने का अधिकार एक ऐसा ही अधिकार है। जीवित रहने के साथ-ही-साथ यथासम्भव स्वाधीनतापूर्वक समाज में विचरण करने, घूमने-फिरने और व्यवहार करने का भी मनुष्य को अधिकार होना ही चाहिए। समाज मानव के हित के लिए है, न कि मानव समाज के लिए। अतः मानव को समाज में स्वतन्त्रतापूर्वक रहने और उसके निर्माण तथा विकास की दिशा में पूरी-पूरी सहायता देने का पूर्ण अधिकार है। समाज को सुसंगठित और व्यवस्थित रख पाने के लिए ही मानव शासन-यन्त्र का निर्माण करता है। अतः जन-साधारण को यह भी अधिकार है कि वह उस यन्त्र के कार्य-कलाप की आलोचना कर सके तथा उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन आदि कर सके।

'अधिकार' और 'कर्तव्य' ये दोनों साथ-ही-साथ चलते हैं। जो एक का अधिकार है, दूसरे को उसका उपयोग करने देना उस व्यक्ति का

कर्तव्य हो जाता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति दूसरों की सम्मति अथवा स्वीकृति से कुछ अधिकारों का स्वयं उपयोग करता है और उन्हीं अधिकारों को दूसरों के लिए सुलभ और योग्य वनाना उसका कर्तव्य हो जाता है। इसी कर्तव्य का वाह्य रूप आचार कहलाता है। शिष्टाचार अथवा शिष्ट आचरण वह है, जिससे दूसरों के अधिकारों के प्रति सद्भावना और आदर का तथा स्वयं अपने अधिकारों के प्रति गौरव और आत्म-सम्मान की भावना का व्यावहारिक प्रदर्शन हो सके।

किसी भी सभ्य देश के नागरिक का यह आवश्यक कर्तव्य हो जाता है कि वह स्वयं अपने अधिकारों को समझे तथा उनका अन्य व्यक्तियों के अधिकारों के साथ सम्वन्ध भी ठीक-ठीक जाने। किसी भी सभ्य समाज की सभ्यता और संस्कृति का मापदण्ड उसके मानवों का आचार ही कहा जा सकता है। वातावरण और आसपास के मानव-समाज को अधिक-से-अधिक सुखी और सहज वना सकना भी शिष्टाचार का एक अंग है।

हमारे देश का भूतकाल इस दृष्टि से एक समय स्वर्ण युग रहा था। हमारे पूर्वजों का नैतिक स्तर विश्व के लिए आदर्श स्वरूप था। हमारे पूर्वज शांति और परस्पर स्नेह से रहने का यथार्थ मूल्य जानते थे। वे यह भी जानते थे कि मानव जवतक मानव के प्रति स्नेहशील, सहानुभूतिपूर्ण और विनम्र नहीं होता है तवतक उसका निजी जीवन भी शांत और सुखी नहीं होता है। और वैसा होना तभी सम्भव होता है, जवकि प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के अधिकारों के प्रति उतना और वैसा ही सम्मान प्रदर्शित कर सके जितने आर जैसे की वह स्वयं दूसरों से आशा करता है। वस्तुतः आचार, व्यवहार और तत्संवंधी नियम समाज को इस दिशा में वल देते हैं। अतः जीवन की सभी दिशाओं में आचार-व्यवहार चलाने का ढंग समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए जानना आवश्यक है। पराधीनता मानव के लिए सवसे बड़ा अभिशाप है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को वह इस प्रकार जकड़ लेती है कि मानव को वहां पनपने का अवसर ही नहीं मिल पाता है। आचार के लिए भी परतन्त्रता घातक ही सिद्ध होती है। भारतवर्ष ज्यों-ज्यों पराधीनता की वेड़ियों में जकड़ता गया उसके वासियों के आत्म-सम्मान पर तो कुठाराघात हुआ ही, साथ-ही-साथ वह शिष्टाचार के

साधारण नियम तक भूल गया। हमारा नैतिक स्तर और आचार-व्यवहार परस्पर अन्योन्याश्रित है। अतः दोनों ही निम्न से निम्नतर होते गए और थोड़े ही काल में पुरातन शिष्टाचार की नींव हिल गई।

जो हो, आज जबकि भारत फिर से स्वाधीन हुआ है, हमें अपना गत गौरव प्रत्येक क्षेत्र में लौटा लाना है। यही नहीं, वरन हमें विश्व के सभी शांतिप्रिय देशों और जातियों का पथ-प्रदर्शन भी करना है। यह तभी संभव हो सकता है जबकि प्रत्येक भारतीय, मानव के उन कर्तव्यों को जो दूसरे मनुष्यों के प्रति किये जाने चाहिए, भली प्रकार समझ सके।

वस्तुतः आचार तो उन सभी आदर्शों, सिद्धांतों और विश्वासों का दर्पण है, जोकि मनुष्य के समाज-प्रिय जीव होने के नाते मानव और समाज से संबंध रखते हैं। वह इनसब सिद्धांतों एवं विश्वासों का मूलाधार है, यानी यथासंभव सब लोगों को प्रसन्न करना और उनकी अप्रसन्नता बचा जाना। मानव का आज का जीवन तो और भी अधिक व्यस्त और कठिन है। ऐसे समय में और भी अधिक आवश्यकता है अपने आसपास के लोगों की सहायता से शांतिमय वातावरण बनाने की। आचार-व्यवहार इस प्रकार का वातावरण बनाने में बहुत दूर तक सहायक होता है। अतः भावी नागरिकों में आरम्भ से ही सदाचार एवं शिष्ट व्यवहार के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न की जानी चाहिए। देश के शासन-संबंधी नियम तो वयस प्राप्त होने पर ही नागरिक पढ़कर जान पाता है, किंतु आचार के नियम तो वे अलिखित सामाजिक निबंध हैं, जिनका कि बाल्यावस्था से ही जानना किसी भी सभ्य देश के वासी के लिए आवश्यक है। यही नहीं, वरन बालक में बाल्यकाल से ही इतनी विवेकबुद्धि तो विकसित हो ही जानी चाहिए जितनी कि विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के व्यवहार करना जानने के लिए आवश्यक हो। अतः शिक्षक-वर्ग के लिए यह एक आवश्यक कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने छात्रों एवं छात्राओं में शिष्ट एवं सद् आचार के प्रति आदर-भावना उत्पन्न करें और उन्हें तत्संबंधी शिक्षा भी दें।

आचार, व्यवहार-संबंधी शिक्षा मौखिक उपदेश की अपेक्षा आचरण द्वारा उदाहरण उपस्थित करने से अधिक शीघ्रतापूर्वक दी जा सकती है।

अध्यापक-वर्ग को चाहिए कि स्वयं बालकों के प्रति अपना आचरण शिष्ट एवं सुन्दर रखें तथा उनकी उपस्थिति में अन्य व्यक्तियों से भी शिष्ट व्यवहार करें। जो हो, विद्यार्थी-अवस्था में ही बालक और बालिकाओं का शिष्टाचार के नियमों का जान लेना अत्यावश्यक है, ताकि बड़े होकर वे समाज के एक उपयोगी नागरिक के रूप में रह सकें। इसी दृष्टि से इस छोटी-सी पुस्तक की रचना हुई है। आशा है, यह विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

महिला विद्यालय, —कंचनलता सब्बरवाल

लखनऊ

विषय-सूची

शिष्टाचार

: १ :

लक्षण और सीमाएं

शिष्टाचार व्यवहार की वह रीति-नीति है, जिसमें व्यक्ति अथवा समाज की आंतरिक सभ्यता और संस्कृति दीख पड़ती है। किसी भी व्यक्ति का दूसरों के प्रति व्यवहार उस व्यक्ति की विवेक-वुद्धि के उस पहलू को दर्शाता है, जिससे समाज में मानव का मानव के प्रति क्या व्यवहार होना चाहिए, इसका ज्ञान होता है।

साधारण बोलचाल और संवोधन से लेकर सेवा और त्याग तक शिष्टाचार में सम्मिलित हैं। शिष्टाचार का वाहरी रूप वह है, जो हम प्रतिदिन के आचार-व्यवहार में देखते हैं, किंतु उसका आंतरिक अथवा आधार रूप वह है, जिसे लेकर आचार-व्यवहार के नियमों का निर्माण होता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानव का आचार-व्यवहार दीख पड़ता है।

शिष्टाचार का मूलाधार मानव की मानव के प्रति सद्-भावना, सहानुभूति और सहयोग की भावना है। शिष्टाचार का आंतरिक रूप है मानव का समाज में वह रूप जो इनसब भावनाओं का प्रतीक हो। वह है उसका नम्र किंतु विवेक-वुद्धि-सहित, विनयी किंतु दृढ़ता-सहित, संयमी किंतु उदारता-सहित स्वरूप।

नम्रता का अर्थ है अहंभावना को संतुलित रखना। मानव में संस्कारवश अहं भाव रहता है। उसका प्रसार मानव की उन इच्छाओं में होता है, जिनके द्वारा वह दूसरों पर राज्य करना, उनसे

अपनी आज्ञा आदि मनवाना चाहता है । 'आत्माभिव्यक्ति' और 'अभिमान' भी अहं के ही रूप हैं। किंतु समाज में जीवित रहने के लिए 'अहं' की भी आवश्यकता है । 'अहं' एकबारगी न तो नष्ट किया जा सकता है और न करना उचित ही है । वस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने 'अहं' का प्रसार और विस्तार उतनी ही दूर तक करे, जहां से किसी दूसरे व्यक्ति से उसका 'अहं' टकरा न जाय । अतः निजी 'अहं' को संयमित एवं संतुलित रखना तथा दूसरों के 'अहं' को भी स्थान देना तथा उसके लिए भी स्थान तथा अवसर देना नम्रता है। शिष्टाचार का आंतरिक रूप है व्यक्ति में नम्रता का होना। यह तभी हो सकता है, जबकि हम मानव के जन्मसिद्ध जीवित और स्वाधीन रहने के अधिकार को स्वीकार कर लें । यदि मुझे विश्व में स्वाधीन होकर जीवित रहने का अधिकार है तो वैसा ही अधिकार अन्य सब मानवों को है। स्वाधीन रहते हुए मुझे यह अधिकार प्राप्त है कि अन्य सब मानव मेरे 'अहं' के प्रति आदर प्रदर्शित करें, तो मुझे भी उनके 'अहं' के प्रति ऐसा ही करना चाहिए। यही नम्रता है। प्रत्येक व्यक्ति को जीवनके प्रत्येक क्षेत्र में आचार-व्यवहार करते हुए हृदय में नम्रता का भाव रखना ही चाहिए।

'नम्रता' और 'दब्बूपन' में वड़ा अन्तर है। एक गुण है और दूसरा दुर्गुण । अपनी निश्चित विचार-धारा, दृढ़ विश्वास और स्थिर विश्वास होते हुए भी दूसरों के विचार आदरपूर्वक सुन सकना, उनपर विचार करना और उन्हें कह लेने का अवसर देना नम्रता है, किंतु अपने विचारों में स्थिरता एवं दृढ़ता का न होना और दूसरों के उचित अथवा अनुचित विचारों के आगे बिना समझे-बूझे अपने विचार को दब जाने देना, उनकी अभिव्यक्ति कर सकने का भी साहस न होना दब्बूपन है। जिस प्रकार अपने ही

अहं को स्थान देना, दूसरों से अपनेको बड़ा दिखाना उद्दण्डता है और उद्दण्डता को दोष माना गया है, उसी प्रकार दब्बूपन भी दोष ही है। नम्रता के साथ-ही-साथ विवेक-बुद्धि-सहित कार्य करना भी आवश्यक है। किंतु वहां भी यह जान लेना चाहिए कि बुद्धि किसी व्यक्ति विशेष की ही बपौती नहीं है, अतः दूसरों की बुद्धि भी सदा हमारी बुद्धि से नगण्य नहीं है।

'संयम' वैसे तो विश्वभर की सभ्यता में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है, किंतु भारतीय संस्कृति तो संयम को बहुत ही अधिक ऊंचा स्थान देती है। शिष्टाचार की तो आधारशिला ही संयम है। उदाहरणार्थ क्रोध आने पर भी यदि एक व्यक्ति अपने क्रोध के पात्र को गाली देना अथवा कटु शब्द सुनाना आरम्भ नहीं करता है तो यह शिष्टाचार है। जब जहां जो कुछ कहना उचित हो, वही कहना शिष्टाचार है और ऐसा कर सकना वाक्-संयम कहलाता हैं। किंतु 'संयम' और 'रूढ़िवाद' में आकाश-पाताल का अन्तर है। चंचल मन और इंद्रियों पर तो संयम होना चाहिए, किंतु आचार-व्यवहार को समय और आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकने योग्य उदारता का होना भी अत्यन्त आवश्यक है।

शिष्टाचार, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, जहां एक व्यक्ति का दूसरे के साथ संबंध होता है, आवश्यक हो जाता है। घर में माता-पिता एवं भाई-बहनों के साथ, स्कूल में सहपाठियों के साथ, सड़क पर सहयात्रियों के साथ, कार्यक्षेत्र में सहकर्मियों के साथ, सब कहीं आचार शिष्ट होना चाहिए। शिष्टाचार का क्षेत्र मानव-जीवन का संपूर्ण सामाजिक क्षेत्र है और इस दृष्टि से उसकी सीमाएं अत्यन्त विस्तृत और दूर तक फैली हुई हैं।

: २ :

जीवन-क्षेत्रों से सम्बन्ध

मानव-जीवन की साधारणतया चार अवस्थाएं होती है : बाल्यकाल, छात्र-जीवन, नागरिक जीवन, आरंभिक और अनुभव-पूर्ण नागरिक जीवन। बाल्यकाल में बालक को अपने गुरुजनों से स्नेह मिलता है और उसे गुरुजनों के प्रति स्नेह और आदर की भावना रखनी पड़ती है। शिष्टाचार का इस स्तर पर यही अर्थ है कि बालकों का आचार गुरुजनों के प्रति आदरपूर्ण हो। आदर का अर्थ यहां शुष्क व्यावहारिक आदर नहीं वरन् स्नेह-मिश्रित आदर-भावना है। छात्र-जीवन में बालक का संबंध एक ओर तो अपने गुरुजनों आदि से होता है, दूसरी ओर अपने सह-पाठियों से भी रहता है। घर पर कुछ बड़ा हो जाने पर उसने जहां बड़ों का आदर करना सीखा था वहीं अपने छोटों से आदर पाना भी देखा था। यहां उसे गुरुजनों का आदर तो करना ही पड़ता है, साथ-ही-साथ अपने ही बराबर के व्यक्तियों से भी व्यवहार रखना होता है। इन्हें वह अभीतक न तो आदर की भावना से देखता था और न स्नेह की ही से। परस्पर सम्पर्क में आने के पश्चात उसे साधारण सामाजिक संबंध स्थापित कर लेना होता है और यह संबंध स्नेह एवं सद्भावना मिश्रित होता है। कभी-कभी ईर्ष्या आदि दुर्गुण भी इस अवस्था में बालक के मन में विकास पाते हैं, किंतु शिष्ट व्यवहार का आधार यहां परस्पर सहयोग, सहि-ष्णुता और सद्भावना ही है। जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करके मनुष्य देखता है कि उसके बहुत-से स्नेह-सम्बन्ध पीछे छूट गये, फिर भी

उसे साधारणतया अधिकाधिक सामाजिक संबंध स्थापित करने पड़ते हैं। इस अवस्था में शिष्टाचार का प्रश्न उतना सरल नहीं रह जाता। अब उसके आचार की दिशाएं बहुमुखी हो जाती हैं। एक ओर तो उसे घर तथा परिवार के सभी व्यक्तियों से पूर्ववत् स्नेह के आधार पर आचार-व्यवहार रखना होता है, जिसमें उसके कुछ गुरुजन भी होते हैं और कुछ वात्सल्य के पात्र भी, दूसरी ओर उसे अपने अफसरों, अधिकारियों आदि से, सहकर्मियों और मातहत कर्मचारियों से तथा व्यवसाय के क्षेत्र से संबंधित अन्य व्यक्तियों से नवीन संबंध स्थापित करने पड़ते हैं। यही नहीं, शासन-यन्त्र के चालकों और अन्य नागरिकों से भी उसका संबंध रहता है। आचार की शिष्टता का आधार प्रत्येक दिशा में भिन्न-भिन्न होता है। कहीं आदर, कहीं स्नेह, कहीं शुष्क कार्य करा सकने की क्षमता, कहीं रुआब और कहीं दृढ़ता आचार को बनाने में सहायता देते हैं। देश और जाति के प्रति तथा मानव-मात्र के प्रति भी उसके कर्तव्य बन जाते हैं और उसका आचरण उस दिशा में भी एक विशेष प्रकार का हो जाता है।

कुछ आगे चलकर उसकी गणना साधारणतया बुजुर्गों में होने लगती है और अब उसका आचार दूसरों के प्रति स्नेह तथा सिखाने की भावना से पूर्ण होने लगता है।

व्यक्ति जीवन के किसी भी क्षेत्र में हो, घर में अथवा बाहर देश अथवा विदेश में, शिष्टाचार उसका एक आवश्यक आभूषण है, जो न केवल उसका ही वरन् उसकी जाति और उसके देश की संस्कृति का भी प्रतीक होता है। शिष्टाचार का व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से अत्यन्त घनिष्ठ संबंध है। वस्तुतः वह सभ्यता और संस्कृति का आधार ही है।

: ३ :

घर में

घर समाज का वह छोटा रूप है, जिसका आधार स्नेह होता है। वालक किसी भी परिवार में जन्म लेते ही उस परिवार के सव सदस्यों के स्नेह का भाजन वन जाता है और बदले में उसे भी सब सदस्यों को स्वाभाविक रूप से स्नेह देना पड़ता है। स्नेह का यह आदान-प्रदान अकृत्रिम होता है। शिष्टाचार इस स्नेह का बाहरी रूप मात्र होता है। घर में प्रत्येक व्यक्ति का एक निजी स्थान होता है; किंतु कोई भी एक व्यक्ति परिवार का सम्पूर्ण स्नेह और सेवा ग्रहण करने योग्य केन्द्र-विन्दु नहीं होना चाहिए। प्रत्येक सदस्य को यह पूरी तरह समझ लेना चाहिए कि उसे परिवार के निर्माण तथा शांतिपूर्वक चलने देने में सहायक होना चाहिए; और यह तभी हो सकता है जबकि वह परिवार में अपना स्थान ठीक-ठीक समझ सके। प्रत्येक परिवार में एक गृहस्वामी और गृहस्वामिनी होते हैं। वच्चों का स्थान भी क्रमशः बनता जाता है। परिवार के सव व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि वे गृहस्वामी और गृहस्वामिनी का आदर करें, न केवल इसीलिए कि वे गुरुजन हैं, वड़े हैं, वरन् इसलिए भी कि वे परिवार की नौका के पतवार हैं। वच्चों का कर्त्तव्य माता-पिता को सदा आदर देना होता है। अतः यह शिष्टाचार के नियमों में सम्मिलित है कि बच्चे माता-पिता तथा अन्य गुरुजनों को सदा 'आप' कहकर पुकारें। 'तुम' का प्रयोग बराबरवालों तथा अपने छोटों के लिए करना चाहिए। यथासंभव अपने लिए 'मैं' का प्रयोग करना चाहिए। उचित तो

यह है कि बच्चे प्रातःकाल उठते ही, अथवा जब भी दिन में पहली बार माता-पिता एवं अन्य गुरुजन मिलें, उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार करें और रात्रि को सोने से पूर्व दो-चार मिनट तक ईश्वर-प्रार्थना करके उन लोगों को प्रणाम करें। नमस्कार बहुत दूर से और चिल्लाकर नहीं करना चाहिए। सदा मीठे स्वर से, साधारणतया धीमी आवाज से, हाथ जोड़कर, सामने आकर करना चाहिए। नमस्कार करते समय मुख पर उदासी नहीं रहनी चाहिए और न हाथों में कोई वस्तु ही। घर में किसी भी गुरुजन के आने पर प्रणाम करना चाहिए, किंतु प्रणाम करना तभी उचित है, जबकि आगन्तुक की दृष्टि अपने पर पड़े। यदि वह किसी अन्य व्यक्ति से बात कर रहे हों तो बीच में बरबस उनका ध्यान अपनी ओर आर्कषित करके प्रणाम करना ठीक नहीं है। परिवार के किसी भी सदस्य का यदि कोई मित्र आया हो तो उसके साथ आदर का व्यवहार करना चाहिए तथा जाते समय स्नेह-पूर्वक प्रणाम करना चाहिए। समयानुकूल आते समय कुशल आदि पूछना और जाते समय फिर दर्शन करने की अभिलाषा प्रकट करना शिष्टाचार है।

यथासंभव माता-पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए और कहीं विरोध करना आवश्यक हो तो नम्रता एवं विनयपूर्वक करना चाहिए।

यदि अपने से बड़े पुकारें तो 'आज्ञा', 'जी हां', आदि आदर-सूचक उत्तर देना चाहिए। ऐसी अवस्था में भी बहुत जोर से नहीं बोलना चाहिए। अपने से बड़ों को संबोधित करते समय उनके साथ अपना संबंध-सूचक शब्द तथा अन्त में 'जी' लगाना चाहिए—जैसे पिताजी, माताजी, मामाजी आदि। यदि कोई व्यक्ति अपना संबंधी न हो तो उसके नाम के साथ 'पंडित' आदि के साथ 'जी'

लगाकर संबोधित करना चाहिए।

इसी प्रकार अपने से छोटों के साथ बोलते समय स्नेह से बोलना चाहिए। छोटों को 'तुम' कहकर संबोधित किया जा सकता है। बैठते समय बड़ों की ओर पीठ करके नहीं बैठना चाहिए तथा सोते समय उनकी ओर पैर करके सोना अनुचित है। चलते समय यदि मार्ग में किसी गुरुजन से भेंट हो जाय और उन्हें भी उसी ओर जाना हो जिस ओर कि हम स्वयं जा रहे हों तो उन्हें पहले मार्ग दे देना चाहिए। यदि साथ चलना हो तो उनके साथ-ही-साथ चलना चाहिए, उनसे आगे नहीं निकलना चाहिए। बात करते समय सदा सामने आकर बात करनी चाहिए। यदि उनके हाथ में कोई सामान हो तो स्वयं ले लेना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई द्वार बन्द हो तो स्वयं उसे आगे बढ़कर खोल देना चाहिए। यदि पर्दा हो तो उसे उठा देना चाहिए।

गुरुजनों के सम्मुख आपस में लड़ाई-झगड़ा करना, अथवा क्रोध से बोलना भी अनुचित है। यदि गुरुजन कोई काम करने को कहें तो छोटों को स्वयं करना चाहिए, किसी दूसरे को वैसा करने की आज्ञा देना अनुचित है। जैसे यदि किसी गुरुजन ने पीने के लिए जल मांगा तो वहीं खड़े-खड़े नौकर को पुकारकर जल लानेके लिए कह देना अनुचित है। उचित तो यह है कि वह व्यक्ति स्वयं जाकर पीने के जल का गिलास लेकर आवे। यदि गुरुजन किसी व्यक्ति को बुला लाने के लिए कहें तो दूर से चिल्लाकर नहीं बुलाना चाहिए, वरन् पास जाकर बुला लाना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति किसी ऊंचे स्थान पर खड़ा हो और उसे अपने से किसी बड़े व्यक्ति से बात करनी हो, जो नीचे खड़ा हो, तो छोटे व्यक्ति को चाहिए कि वह नीचे उतरकर बात करे, वहीं से खड़े-खड़े बातचीत करना आरम्भ न कर दे। यदि बैठने

के लिए कहीं एक ही कुर्सी हो अथवा किसी कारण से गुरुजन खड़े होकर बात कर रहे हों तो स्वयं भी खड़े होकर ही वातचीत करनी चाहिए।

अपने परिवार में सव वालकों का स्नेह और मान होता है, किंतु उनका भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उनका व्यवहार परिवार में जो व्यक्ति बड़े हैं, उनके प्रति आदरपूर्ण तथा जो बराबरवाले और छोटे हैं, उनके प्रति स्नेहपूर्ण हो। न केवल व्यवहार में ही आदर की भावना होनी आवश्यक है वरन् हृदय में अपनत्व की भावना होना भी अनिवार्य है। परिवार का सम्मान परिवार के प्रत्येक सदस्य का सम्मान है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह हर प्रकार से परिवार के मान-गौरव की रक्षा करे, भले ही उसे इसके लिए कुछ त्याग क्यों न करना पड़े।

परिवार में वड़ों को चाहिए कि अपने से छोटों की आवश्यकताओं का ध्यान रखें तथा यथासंभव उनकी आवश्यकताएं अपनी आवश्यकताओं से पहले पूरी करें। यदि अपने से छोटों से कोई त्रुटि हो जाय तो प्यार से उसे समझा दें तथा यह आशा प्रकट करें कि आगे वह त्रुटि दोहराई नहीं जायगी। बड़ों अथवा छोटों से, किसीसे भी वोलते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि सुननेवाले कितने व्यक्ति हैं। जितने व्यक्ति सुननेवाले हों उसी अनुपात से अपना स्वर ऊंचा अथवा नीचा रखना चाहिए। एक या दो व्यक्तियों से बोलते समय अनावश्यक रूप से चिल्लाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

घर के काम-काज में यथासंभव बालकों को भी बड़ों का हाथ बंटाना चाहिए और बड़ों के आदेशों का पालन प्रसन्न मन से और मुस्कराहट-सहित करना चाहिए। कभी और किसी कारण

भी बड़ों से बातचीत करते समय मुंह बनाना या उदासी प्रकट करना उचित नहीं है। किसी भी काम के करने अथवा चीज पाने के लिए बड़ों के साथ अनावश्यक हठ नहीं करना चाहिए, क्योंकि माता-पिता सदैव बालकों का हित ही देखते हैं और यथासंभव उनके कल्याण का ही मार्ग उन्हें दिखाते हैं।

: ४ :

स्कूल में

स्कूली दुनिया की अपनी ही सीमाएं होती हैं तथा वहां आचार के नियम भी अपने ढंग के होते हैं, यद्यपि वहां भी आचार के आधारभूत सिद्धांत सहानुभूति, सहयोग और समाजप्रियता ही होते हैं। बालक स्कूल में आकर अपने-आपको एक नवीन वातावरण में पाता है, जहांकि यह आवश्यक नहीं है कि सब व्यक्ति उसकी ओर ही ध्यान दें तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करें। वहां उसे कुछ लोग अपने गुरुजन देख पड़ते हैं और कुछ सहपाठी। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसे भी बालक अथवा बालिकाएं होती हैं, जो उसके सहछात्र तो होते हैं, किन्तु उसके सहपाठी नहीं होते। अतः स्कूल में शिष्टाचार का आधार अपने गुरुजनों के प्रति आदर, सहपाठियों के प्रति सहज स्नेह और छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों के प्रति वात्सल्य का भाव होता है। साधारणतया विद्यार्थियों को पाठशाला में आते अथवा जाते समय जब भी कोई अध्यापक देख पड़े हाथ जोड़कर आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिए। कहीं और किसी भी समय यदि कोई विद्यार्थी बैठा हो और उस ओर से कोई अध्यापक जा रहा हो तो विद्यार्थी को उठकर खड़ा हो जाना चाहिए और उस समय तक खड़े रहना चाहिए जबतक कि गुरुजी उस स्थान से चले न जायं। यदि वह गुरुजी से कोई बात कर रहा हो अथवा गुरुजी उससे कुछ बात कर रहे हों तो उस समय तक कि जबतक गुरुजी खड़े होकर बात कर रहे हों उस छात्र को भी खड़े रहना चाहिए। यदि किसी एक

ही ओर अध्यापक और विद्यार्थी जा रहे हों तो विद्यार्थियों को चाहिए कि अध्यापकों के लिए मार्ग छोड़कर एक ओर हो जायं और उन्हें पहले निकाल जाने दें। कक्षा में अध्यापक के आने पर सब विद्यार्थियों को खड़ा हो जाना चाहिए और अध्यापक के बैठने की आज्ञा देने पर ही बैठना चाहिए। कक्षा के काम का एक घंटा समाप्त हो जाने पर विद्यार्थियों को उस समय तक शांत रहना चाहिए जबतक कि अध्यापक कक्षा से बाहर न चले जायं। अध्यापक जब कक्षा से बाहर जाने लगें तो छात्रों को उन्हें खड़े होकर विदा देना चाहिए। कक्षा में आते समय और कक्षा से जाते समय छात्रों को पंक्ति बनाकर विना शब्द किये शांतिपूर्वक आना-जाना चाहिए, यदि किसी एक कमरे में से एक कक्षा को बाहर जाना और दूसरी को आना हो तो निकलनेवाली कक्षा के छात्रों को पहले जाने देना चाहिए। अध्यापक की किसी भी आज्ञा को सुनकर छात्र को आदरपूर्वक उत्तर देना चाहिए तथा यथासंभव आज्ञा का पालन भी करना चाहिए।

छात्रों को प्रतिदिन विद्यालय का सूचना-पट्ट देख लेना चाहिए तथा उसपर लिखी प्रत्येक विज्ञप्ति पर ध्यान देना चाहिए। कक्षा के अन्य विद्यार्थियों के साथ सहयोग और स्नेह का व्यवहार करना चाहिए, उनकी प्रत्येक विषय में यथासंभव सहायता भी करनी चाहिए।

विद्यालय की छुट्टी होने के अवसर पर छात्रों को एकबारगी भीड़ करते हुए नहीं निकलना चाहिए, वरन् दूसरों को मार्ग देते हुए निकलना चाहिए।

विद्यालय के किसी भी उत्सव तथा अन्य पर्व आदि मनाने के अवसर पर छात्रों को निमन्त्रित व्यक्तियों के स्थानों पर बैठ जाने से पूर्व आगन्तुकों को सादर बिठाना चाहिए तथा रिक्त

स्थान न रह जाने पर स्वयं एक किनारे खड़े रह जाना चाहिए, किसी भी अवस्था में आगन्तुकों के सम्मुख भीड़ लगाना उचित नहीं है। यह भी उचित नहीं है कि अपने विद्यालय के किसी भी कार्यक्रम को देखने के चाव और प्रयत्न में छात्र निमन्त्रित व्यक्तियों को भली प्रकार वह कार्यक्रम देखने न दें।

विद्यालय में नवीन प्रवेश-प्राप्त छात्रों के प्रति पुराने छात्रों को सदय होना चाहिए। पुराने छात्रों को उन्हें बुलाकर उनसे स्वयं ही बातचीत करनी चाहिए तथा उन्हें विद्यालय के वातावरण, आचार-व्यवहार, रीति-नीति आदि से परिचित करना चाहिए।

अपने से बड़ी कक्षा के विद्यार्थियों को 'आप' कहकर संबोधित करना चाहिए तथा उन्हें भी आदर-भाव से देखना चाहिए।

जिस समय विद्यालय में काम-काज हो रहा हो किसी भी छात्र को कक्षाओं के पास से जोर से बोलते हुए नहीं निकलना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से कक्षा के भीतर पढ़नेवाले छात्रों तथा पढ़ानेवाले अध्यापकों को असुविधा होती है।

प्रत्येक विद्यालय में रद्दी कागज आदि फेंकने के लिए स्थान-स्थान पर टोकरियां रखी होती हैं। प्रत्येक विद्यार्थी का कर्त्तव्य है कि वह उन टोकरियों के अतिरिक्त और कहीं कोई फटा हुआ कागज अथवा मूंगफली आदि के छिलके न फेंकें। दीवारों पर लकीरें खींचना, नाम लिखना अथवा डेस्कों पर स्याही आदि गिराना अत्यन्त अशिष्ट व्यवहार है। यदि कहीं धरती पर कूड़ा पड़ा दिखाई दे तो उसे उठाकर रद्दी काग़ज़ डालने की टोकरी में डाल देना चाहिए।

विद्यालय-भवन में अथवा खेल के मैदान में कहीं भी यदि कोई पुस्तक अथवा अन्य वस्तु पड़ी मिल जाय तो उसे तुरन्त ही मुख्याध्यापक को दे देना चाहिए।

कक्षा में जो विद्यार्थी पहले आते हैं, उन्हें अन्तिम सिरे के स्थानों पर बैठना चाहिए, ताकि उनके पीछे आनेवाले छात्रों को सरलता से स्थान मिल सके। इसी प्रकार निकलते समय द्वार के निकट बैठे हुए छात्रों को पहले निकलना चाहिए, ताकि कुछ अधिक अन्दर बैठे हुए छात्रों को निकलने के लिए सुविधापूर्वक स्थान मिल सके।

कक्षा के सब विद्यार्थियों को मुख्य छात्र अथवा मानीटर के प्रति तथा विद्यालय-भर के समस्त छात्रों को विद्यालय परिषद् अथवा पंचायत के अध्यक्ष के प्रति आदर-भाव रखना चाहिए और साधारणतया उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिए।

विद्यालय में अधिकारियों की आज्ञा के बिना कोई भी कुर्सी, मेज अथवा अन्य वस्तु एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं ले जानी चाहिए और यदि आज्ञा प्राप्त करके भी ले जाई जाय तो कार्य हो चुकने पर उसे यथास्थान रख देना चाहिए। विद्यालय की सब वस्तुओं को सावधानी से उपयोग में लाना चाहिए, ताकि वे टूट-फूट न जायं।

विद्यालय के सभी छात्रों के साथ विद्यालय-सम्बन्धी प्रत्येक कार्य में सहयोग का व्यवहार करना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी का कर्त्तव्य विद्यालय के गौरव-मान की यथार्थ रूप में रक्षा करना होना चाहिए। इस आदर्श को लेकर किया जानेवाला व्यवहार शिष्ट होता है।

: ५ :

कालेज में

कालेज में विद्यार्थियों पर उत्तरदायित्व का भार अधिक आ जाता है। साथ ही, गुरुजनों का भी व्यवहार छात्रों के साथ पुत्र की अपेक्षा मित्र के समान अधिक होने लगता है। अब यह आवश्यक नहीं रह जाता कि सारे आदेश गुरुजी की ही ओर से हों वरन् छात्र स्वयं अपने कर्त्तव्यों को समझने लगते हैं। उनका आचार यहां भी गुरुजनों के प्रति आदरपूर्ण, साथी-संगियों के प्रति स्नेहपूर्ण और नवागन्तुकों के प्रति नम्र और सदय होना चाहिए। आचार में जितनी अधिक स्वतंत्रता होगी उतना ही अधिक उत्तरदायित्व भी हो जायगा। कालेज के छात्रों को स्कूल के छात्रों की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता होती है। अतः उनका गुरुजनों तथा नवागन्तुकों के प्रति उत्तरदायित्व भी अधिक हो जाता है। यही नहीं, कालेज के बाहर भी भावी नागरिक होने के नाते उनका कुछ-न-कुछ उत्तरदायित्व हो ही जाता है। कालेज के भीतर तो उन्हें अधिकारियों के प्रति आदर और सम्मान की भावना रखनी ही चाहिए। किसी भी आज्ञा का विरोध करने से पूर्व, गंभीरतापूर्वक उस आज्ञा की भलाइयों पर पूरी तरह विचार करना चाहिए। समूहवृत्ति यद्यपि यहीं पर सबसे अधिक काम करती है, तथापि उसमें बह जाना अनुचित है। बुद्धि और विवेक द्वारा विचार करके ही काम करना चाहिए, विशेषतया गुरुजनों के आदेश ध्यानपूर्वक सुनकर उनपर मनन अवश्य करना चाहिए। हुल्लड़बाजी और ऐसी शरारतें, जिनसे दूसरों को कष्ट हो, अशिष्टता की द्योतक

होती हैं।

सहिष्णुता शिष्टाचार की पृष्ठभूमि है। दूसरों के विषय में आसानी से सम्मति प्रकट कर देना, उनकी हँसी उड़ाना, उन्हें अकारण छेड़ना आदि अशिष्ट व्यवहार कहे जा सकते हैं। यदि दूसरों का व्यवहार प्रिय न भी हो तो भी उसे सह लेना तथा मधुरतापूर्वक अपने शिष्ट व्यवहार से दूसरों को उनके अशिष्ट व्यवहार का भान करा देना शिष्टाचार है।

स्वाधीनता का दूसरा नाम उद्दण्डता नहीं है। सभी प्रकार के अधिकार-प्राप्त व्यक्तियों का विरोध करना स्वाधीनता नहीं है। वस्तुतः अपने ऊपर उचित अधिकार अथवा संयम होना ही स्वाधीनता है। अपने अधीन होने पर मनुष्य सुखी रहता है, किंतु स्वयं अपना अधिकार यदि अपने ऊपर न हो तो मनुष्य उद्दण्ड एवं असंयमी बन जाता है। अतः कालेज के छात्रों को स्व-अधीन एवं विवेकी होना चाहिए। ऐसा व्यक्ति कभी भी किसी के प्रति अशिष्ट नहीं हो सकता। उसका विरोध भी शिष्ट तथा वैधानिक ही होगा।

कालेज के विद्यार्थियों को यह समझ लेना चाहिए कि जन-सुरक्षा तभी हो सकती है जबकि अधिकारों का उपयोग कर्त्तव्यों के साथ रखकर किया जाय। ऐसा करने में यह आवश्यक है कि अपने अधिकारों के प्रति दूसरों की श्रद्धा और आदर ग्रहण किया जाय तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति स्वयं भी आदर और सम्मान का भाव रखा जाय। किसी भी देश में यदि व्यक्ति कानून को हाथ में लेना चाहते हैं तो सुव्यवस्था नहीं रह पाती। अतः न्याय और कानून को मानकर चलने की आदत कालेज में ही पड़ जानी चाहिए।

: ६ :

यूनीवर्सिटी में

यूनीवर्सिटी अथवा विश्वविद्यालय तक पहुंचते-पहुंचते व्यक्ति का ज्ञान और उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। अब वह नागरिकता के बहुत ही समीप पहुंच जाता है और किसी-किसी छात्र को तो मताधिकार-सहित नागरिकता के पूरे अधिकार भी प्राप्त हो जाते हैं। अतः विश्वविद्यालय में छात्रों को उसी उत्तरदायित्वपूर्ण भाव से व्यवहार करना चाहिए, जिससे कि नागरिक करते हैं।

गुरुजनों के साथ अब उसका व्यवहार मित्र की भांति भले ही हो, किंतु होना चाहिए आदरपूर्ण ही। शिष्ट व्यवहार के अन्य सभी ढंग उसी प्रकार रहते हुए भी यहां आकर छात्र छात्राओं से भी व्यवहार रखना सीखते हैं। नारी के प्रति पुरुष के मन में सदैव एक प्रकार का आदर-भाव होना चाहिए। यद्यपि छात्रावस्था में पुरुष और नारी का भेद उतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं होता है और होना भी नहीं चाहिए, किंतु यह तो आवश्यक ही है कि नारी कौतूहल की सामग्री न होकर, आदर की वस्तु हो। साधारणतया महिलाओं के प्रति छात्रों का व्यवहार स्पष्ट, नम्र किंतु अकृत्रिम होना चाहिए। हँसी उड़ाना, नाम रखना आदि शिष्ट व्यवहार के अंग नहीं हैं। छात्राओं को भी छात्रों के प्रति अपना व्यवहार सरल, स्पष्ट किंतु गौरवपूर्ण रखना चाहिए। कहीं भी महिला को स्थान न पाते हुए देखकर पुरुष को अपना स्थान दे देना चाहिए। कहीं भी शारीरिक श्रम की आवश्यकता हो तो पुरुष को चाहिए

कि वह नारी को अपनी सहायता भेंट करने का प्रस्ताव करे। स्त्रियों की ओर अकारण घूरकर देखना अशिष्टता है।

भावी नागरिक होने के नाते यूनीवर्सिटी के छात्रों को व्यवस्था एवं अनुशासनप्रियता सीखना अत्यावश्यक है। कभी और किसी भी कारण से उनके व्यवहार में उद्दण्डता और धृष्टता नहीं आनी चाहिए।

नवागन्तुकों को ठीक-ठीक मार्ग दिखाना तथा रीति-नीति बतलाना आवश्यक है। किसी भी स्वीकृत और स्थापित अधिकार, नियम और निर्बन्ध के सम्मान की रक्षा करनी ही चाहिए।

विश्वविद्यालय के उत्सवों पर नवागन्तुकों तथा महिलाओं को उचित स्थान तक ले जाना तथा विठाना शिष्टता है।

वे सब व्यवहार जो नियम, व्यवस्था और अनुशासन रखने में सहायक हों तथा दूसरों के लिए सुविधाजनक और आनन्द-दायक हों, शिष्टाचार कहलाते हैं और वे व्यवहार जो कि अन्य व्यक्तियों के लिए कष्टकर और व्यवस्था के लिए हानिकर हों, अशिष्ट व्यवहार हैं।

: ७ :

सड़क पर

सड़क जन-वस्तु है। उसकी आवश्यकता सब नागरिकों को पड़ती है और सब उसे उपयोग में लाते हैं। सड़क के आर-पार जाने-आनेवाले लोगों की संख्या पर्याप्त होती है। अतः कुछ ऐसे नियम होने ही चाहिए, जिनसे आनेवाले और जानेवाले दोनों सरलता से मार्ग पा सकें। यह तो हुई पैदल चलनेवालों की बात। इनके अतिरिक्त गाड़ी, तांगे, मोटरें आदि भी चलती हैं और उन सबसे कहीं कोई दुर्घटना न हो जाय, यह ध्यान रखना है। अतः सदैव सड़क के बाईं ओर चलना चाहिए। चलते समय सावधानी से अपने आस-पास की वस्तुओं तथा व्यक्तियों को देखें ताकि टक्कर न लग जाय। सड़क के एक ओर से दूसरी ओर बीच से होकर जाते समय दोनों ओर देख लेना चाहिए कि कोई मोटर-गाड़ी तो नहीं आती है। यदि कोई साइकिल, मोटरसाइकिल अथवा मोटर पर चल रहा हो तो उसे चौराहे पर खड़े हुए सिपाही के संकेतों तथा अन्य यातायात के नियमों का पूरा-पूरा पालन करना चाहिए। भीड़ होने पर सावधानी से चलना चाहिए, ताकि किसी सहयात्री को धक्का न लग जाय। विशेषतया महिलाओं और बालकों का अधिक ध्यान रखना चाहिए। मेले अथवा पर्व आदि के अवसर पर किसी अवस्था में भी सड़क घेरकर तथा सड़क पर झुंड लगाकर खड़ा नहीं होना चाहिए। यदि सड़क पर कोई दुर्घटना हो जाय तो यथासंभव उस स्थान पर भीड़ नहीं होने देना चाहिए।

कभी और किसी अवस्था में भी सड़क पर फटे हुए कागज,

फलों के छिलके आदि नहीं फेंकने चाहिए, क्योंकि नागरिक होने के नाते सड़क पर स्वच्छता रखना भी हमारा कर्त्तव्य है।

सड़क पर चलते हुए इधर-उधर की बातों में लग जाना और बहुत जोर-जोर-से बोलना अनुचित है। सड़क पर चलनेवाले अन्य व्यक्तियों पर अकारण अपनी सम्मति प्रकट करना अथवा उन्हें छेड़ना भी अनुचित है।

यदि सड़क पर कोई छिलका आदि पड़ा देखो तो तुरन्त उसे उठाकर कूड़े की टोकरी में डाल दो अथवा पैर से सरकाकर सड़क के बिल्कुल किनारे कर दो।

यदि अपने से कुछ आगे चलते हुए सहयात्री की अनजाने में कोई वस्तु सड़क पर गिर जाय तो उसे उठाकर नम्रतापूर्वक उस व्यक्ति को दे देनी चाहिए और यदि ऐसे ही कोई अन्य व्यक्ति अपनी कोई वस्तु दे तो उसे 'धन्यवाद' अवश्य देना चाहिए।

सड़क पर हिलते-डुलते, हँसी-मजाक करते अथवा लड़ते-झगड़ते नहीं चलना चाहिए। किसी भी कारण से चौराहे के सिपाहियों को छलने अथवा खिजाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। सड़क के बीच में भी नहीं चलना चाहिए। सड़क के दोनों किनारे पैदल लोगों को और बीच में तांगे-गाड़ियों आदि को चलना चाहिए। यदि पान खाने की आदत हो तो सड़क पर पीक नहीं थूकना चाहिए। इसी प्रकार जुकाम आदि होने पर भी सड़क का उपयोग थूकने व नाक साफ करने के लिए नहीं करना चाहिए।

सड़क के किनारे पर कहीं-कहीं सरकारी पार्क, बाग-बगीचे आदि होते हैं। वहां प्रायः सन्ध्या समय बेंचों पर लोगों के बैठने का भी प्रबन्ध होता है। उन बेंचों पर बैठकर फल-मूंगफली आदि खाकर उनके छिलके वहीं नहीं फेंक देने चाहिए। सार्वजनिक स्थानों की स्वच्छता का उत्तरदायित्व नागरिकों पर ही है। शिष्ट

नागरिक वही है, जोकि सब स्थानों को स्वच्छ रखने का पूरा प्रयत्न करता है।

सड़क पर अथवा पार्क आदि में मित्रों के मिल जाने पर एक किनारे खड़े होकर इस ढंग से बातचीत करनी चाहिए, जिससे अन्य लोगों को असुविधा न हो।

: ८ :

सवारियों में

मोटर-बस, रेलगाड़ी अथवा अन्य किसी प्रकार के यान में प्रवेश करते समय सबसे अधिक आवश्यक यह है कि जिन व्यक्तियों को उतरना है, उन्हें पहले उतर जाने दिया जाय। कभी-कभी इस घबराहट में कि मोटर-बस अथवा रेलगाड़ी चली न जाय, चढ़नेवाले उतरनेवालों से पहले ही गाड़ी के भीतर पहुंच जाना चाहते हैं। उतरनेवाले भी इसी घबराहट में होते हैं कि कहीं गाड़ी उन्हें लिये हुए न चल दे। अतः द्वार के निकट दोनों पक्षों का विचित्र सम्मेलन-सा हो जाता है। वस्तुतः यदि उतरनेवालों को शीघ्रतापूर्वक उतर सकने की सुविधा देने के लिए चढ़नेवाले तनिक देर बाहर प्रतीक्षा कर लें तो समय की बचत हो और कष्ट भी कम।

मोटर-बसों में सीटें गिनती की होती हैं तथा कुछ स्थान खड़े होकर जानेवालों के लिए होता है। यदि स्थान न हो और चालक का सहकारी यह कह दे कि स्थान रिक्त नहीं है तो हठ नहीं करना चाहिए वरन् शांतिपूर्वक दूसरी मोटर-बस की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

मोटर-बस अथवा रेलगाड़ी का टिकट लेते समय यदि भीड़ अधिक हो तो शांतिपूर्वक पंक्ति बना लेनी चाहिए, जिससे जो पहले से खड़े हों उन्हें पहले स्थान मिल जाय। कभी-कभी इससे हमें असुविधा तो अवश्य होती है, कुछ देर भी लगती है; किन्तु ऐसा करने से सबको सुविधा हो जाती है। यह नहीं होना चाहिए कि दुर्बल मुंह ताकते रह जायं और सबल टिकट लेकर चले जायं।

अतः इस प्रकार बिना भीड़ किये नियमित रूप से स्वयं पंक्ति में खड़े होकर टिकट लेना शिष्ट व्यवहार है।

मोटर-बस में लोगों के उतर चुकने के पश्चात् चढ़ने को क्रम से खड़ा हो जाना चाहिए और बहुत अधिक पीछे आने के कारण जिन्हें स्थान न मिल सके, उन्हें दूसरी बस की प्रतीक्षा करनी चाहिए। बस में चढ़ते ही पहले चढ़नेवालों को सबसे अगली सीटों पर बैठना चाहिए, ताकि पीछे आनेवालों को असुविधा न हो। जहां दो या तीन स्थान रिक्त हों वहां ऐसे स्थान पर बैठना चाहिए, जिससे शेष स्थान पीछे आनेवाले बिना उसे हटाये ही उपयोग में ला सकें।

बस में बैठकर जोर-जोर से अपने साथियों से बातचीत करना असभ्यता है। धूम्रपान करना अर्थात् सिगरेट, बीड़ी, सिगार आदि पीना भी अनुचित है, क्योंकि बहुत सम्भव है कि अन्य यात्रियों को उससे असुविधा हो।

यदि बस में खड़े होने का स्थान किसी स्त्री अथवा बालक के पास हो तो उसे अपना बैठने का स्थान दे देना पुरुषों के लिए उचित है, विशेषतया बूढ़े तथा गोद में बालक लिये हुए माता का अधिक ध्यान रखना चाहिए।

उतरते समय भी पहले पीछे बैठे हुए और उससे भी पूर्व खड़े हुए व्यक्तियों को उतरने देना चाहिए। किसी भी कारण से किसी सहयात्री के प्रति अपशब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

रेलगाड़ी में, विशेषतया तीसरे दर्जे में, यात्री अधिक होने के कारण कभी-कभी बड़ी असुविधा हो जाती है, किन्तु प्रत्येक यात्री को यह समझ लेना चाहिए कि अन्य यात्री भी जो भीतर आ चुके हैं, वहीं बैठेंगे। यह भी ठीक है कि जिन व्यक्तियों को उस रेलगाड़ी से यात्रा करनी है, वे करेंगे ही। अतः प्लेटफार्म पर रेलगाड़ी

खड़ी हो तो अपने द्वार पर अड़कर खड़े हो जाना और दूसरे यात्रियों को दर्जे के भीतर न आने देना असभ्यता है। उलटे आने-वालों के लिए द्वार खोल देना तथा भीतर आ जाने पर यदि बैठने की ठीक जगह न हो तो ट्रंकों, बिस्तरों आदि को इस प्रकार ठीक से रख देना चाहिए कि जिससे बैठने की जगह निकल सके। जगह की कमी होने पर प्रत्येक नवयुवक और नवयुवती का कर्त्तव्य है कि वह बालक, वृद्ध, निर्बल और रोगी लोगों के लिए स्थान दे दें। स्थान के लिए लड़ना किसी भी अवस्था में उचित नहीं है। यदि कहीं भी स्थान न मिले तो कुछ देर तक शांतिपूर्वक एक ओर खड़े रहना चाहिए। ऐसा करने पर स्थान अवश्य ही मिल जाता है।

उस छोटे-से कम्पार्टमेंट को, जिसमें बहुत-से लोग बैठते हैं, स्वच्छ रखना सबका कर्त्तव्य है। अतः पानी, छिलके, कागज आदि को फर्श पर नहीं गिराना चाहिए तथा खिड़की से बाहर थूकना चाहिए। गुसलखाने को भी सावधानी से उपयोग में लाना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार समय-समय पर स्टेशनों पर उसे धुलवा-कर स्वच्छ भी करवा लेना चाहिए। बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वह जहां-तहां गन्दगी न करें।

सहयात्रियों के साथ नम्रता और विनय से वर्ताव करना चाहिए और यथासंभव किसीको भी अपने कारण असुविधा में नहीं डालना चाहिए। बिस्तर लगवाने आदि छोटे-मोटे कामों में दूसरों की सहायता कर देना उचित है। यदि कोई साथी व्यंग भी कर दे तो उसका उत्तर प्रसन्न मुख से सहज भाव से ऐसे देना चाहिए जिससे झगड़ा न बढ़े। यदि कोई सहयात्री कोई ऐसा काम कर रहा हो, जिससे कि दूसरों को असुविधा होने की संभावना हो तो उसे नम्रतापूर्वक समझा देना चाहिए।

कुछ खाने से पूर्व अन्य साथियों से पूछ लेना सभ्यता है। खा-पी चुकने के पश्चात् पत्ते, कागज आदि, रेलगाड़ी के प्लेटफार्म पर खड़े होने पर, कूड़े की टोकरी में डाल देना चाहिए। रात अधिक हो जाने पर यदि स्वयं नींद न भी आ रही हो तो अन्य साथियों से पूछ लेना चाहिए कि बिजली की बत्ती जलती रहे अथवा बुझा दी जाय। यदि और लोगों को बत्ती जलती रहने से असुविधा होती हो तो उसे बन्द कर देना चाहिए।

रेलगाड़ी से उतरकर बाहर जाने के रास्ते पर भीड़ नहीं करनी चाहिए। बारी-बारी से निकलना चाहिए।

: ६ :

खेल के मैदान में

मानव-चरित्र खेल के मैदान में सबसे अधिक दिखाई देता है। एक खिलाड़ी का व्यवहार दूसरे खिलाड़ी के प्रति, भले ही वह उसका प्रतिद्वन्द्वी हो, मित्र का-सा होना चाहिए। वस्तुतः मनुष्य जीवन-क्षेत्र में आकर यथोचित व्यवहार करना सर्वप्रथम खेल के मैदान में ही सीखता है। यहां वह दूसरे खिलाड़ियों का प्रतिद्वन्द्वी होता है। अपने पक्ष की विजय के लिए कामना भी करता है और प्रयत्न भी; किन्तु यह सब होते हुए भी दूसरे पक्ष के प्रति उसकी विद्वेष-भावना नहीं होती, यहांतक कि पराजित हो जाने पर भी विजेता खिलाड़ियों से द्वेष नहीं करता वरन् पराजय को सहज भाव से ग्रहण करना सीखता है, स्वयं मुंह नहीं लटकाता।

शिष्ट खिलाड़ी खेल के मैदान में कभी नियमों के विरुद्ध नहीं खेलते तथा निर्णायक अथवा खेल के संचालक की प्रत्येक आज्ञा का पूर्ण पालन करते हैं। यदि किसी समय रैफ़री या अंपायर कोई ऐसा भी निर्णय दे दे, जोकि ठीक नहीं है, तो भी खिलाड़ी को उसपर पूरा विश्वास रखना चाहिए। खिलाड़ी का कर्त्तव्य है कि वह विपक्षी खिलाड़ी को अनुचित ढंग से गिराने या हराने का प्रयत्न न करे।

खेल के मैदान में खिलाड़ियों के अतिरिक्त दर्शक भी होते हैं। ये लोग कुछ खिलाड़ियों को उत्साहित करते रहते हैं; किन्तु यह प्रोत्साहन ऐसे ढंग से नहीं होना चाहिए, जिससे कि विपक्ष के

खिलाड़ी असुविधा में पड़ जायं। वस्तुतः उत्साहित करना शिष्ट ढंग से होना चाहिए, हुल्लड़बाजी से नहीं। ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए, जो किसीके लिए अपमानजनक अथवा पीड़ा पहुंचानेवाले हों।

खेल के पश्चात् यदि अपना पक्ष जीत जाय तो प्रसन्नता अवश्य प्रकट की जाय, किन्तु सभ्य ढंग से। हार जाने पर भी प्रसन्न मुख से जीतनेवालों को बधाई देनी चाहिए। किसी भी अवस्था में यह नहीं सोचना चाहिए कि खेल का मैदान वह स्थान है, जहांकि उद्दण्ड अथवा असंयमित होना आवश्यक हो। सार्वजनिक खेलों के अवसर पर खेल समाप्त होते ही खिलाड़ियों के पीछे पड़ जाना, उन्हें घेर लेना अथवा हस्ताक्षरों के लिए तंग करना अनुचित है।

दर्शकों को बैठते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि अन्य सहदर्शकों के लिए भी स्थान रहना चाहिए। खेल समाप्त होने पर वहीं जोर-जोर से खेल की अथवा खिलाड़ियों की आलोचना करना अनुचित है।

विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं में भाग लेनेवालों को नियम मानकर चलना चाहिए तथा निर्णायकों के निर्णय पर आक्षेप अथवा टीका-टिप्पणी नहीं करनी चाहिए। निर्णय से असन्तुष्ट होने पर भी असन्तोष प्रकट नहीं करना चाहिए तथा प्रतियोगिता में भाग लेनेवालों में से जो सफल न हो सके हों, उनके प्रति सदय एवं सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए।

वाद-विवाद की प्रतियोगिताओं में भाग लेनेवालों को केवल अध्यक्ष को सम्बोधन करना चाहिए तथा विपक्षी के तर्कों का उत्तर देते हुए विपक्षी को न तो सम्बोधित ही करना चाहिए और न उसकी कोई व्यक्तिगत आलोचना ही करनी चाहिए।

बोलते समय विषय की सीमाओं के भीतर रहना तथा अनावश्यक बातें न कहना ही उचित है।

किसी प्रकार का सम्मान अथवा पुरस्कार मिलने पर देने-वाले व्यक्ति को पुरस्कार लेकर प्रणाम करना चाहिए तथा फिर लौटकर अपने स्थान पर आकर बैठ जाना चाहिए और जबतक सभा विसर्जित न हो जाय, अपने मित्रों को बिना मांगे पुरस्कार दिखाना अथवा दूसरों का पुरस्कार मांगकर देखना आरम्भ नहीं करना चाहिए। इससे सभा के कार्य में विघ्न पड़ता है। पुरस्कार पर जो लोग बधाई दें, यदि वे गुरुजन हों तो, उन्हें नम्रतापूर्वक प्रणाम कर लेना चाहिए और साथी-संगी होने पर उनकी बधाई मुस्कराकर ग्रहण करनी चाहिए।

यदि प्रतियोगिता में अपने विद्यालय की ओर से भाग ले रहे हों तो प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त करने पर उस विद्यालय से आये हुए यदि कोई अध्यापक साथ हों तो उन्हें प्रणाम करना चाहिए तथा पुरस्कार ले जाकर सादर दिखाना चाहिए। किसी भी कारण से अपनी पुरस्कार प्राप्त करने की प्रसन्नता इस ढंग से प्रकट नहीं करनी चाहिए कि देखने-सुननेवालों को अहंकार जान पड़े। किसी भी प्रतियोगिता में असफल होनेवाले छात्रों के साथ सफलता-प्राप्त छात्रों को ऐसा व्यवहार करना चाहिए, जिससे उन्हें दुःख न हो।

: १० :

मित्रों के साथ

मित्रों में उन व्यक्तियों की गणना की जा सकती है, जिनसे साधारण परिचय से कुछ अधिक घनिष्ठता हो। ऐसे व्यक्ति परिचित अथवा कुछ उदार अर्थ में मित्र भी कहे जा सकते हैं। ऐसे मित्रों के साथ बातचीत और व्यवहार करते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उनकी अपनी भी स्वतन्त्र विचारधारा और सिद्धांत हो सकते हैं। अतः उन सबका ध्यान रखते हुए ही उनसे व्यवहार करना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों से 'आप' कहकर बातचीत की जा सकती है और कुछ अधिक घनिष्ठता होने पर 'तुम' कहकर और नाम लेकर भी सम्बोधित किया जा सकता है। मिलने पर उनसे नमस्कार करना चाहिए और घर आने पर आवभगत भी करनी चाहिए। ऐसे व्यक्तियों के साथ व्यवहार ईमानदारी का, सच्चाई का और स्पष्ट होना चाहिए। साधारण शिष्टाचार के सभी नियमों को साधारणतया व्यवहार में लाना उचित है, किन्तु यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि कभी कोई ऐसी बात नहीं कही जाय, जो सुननेवाले मित्र को कर्णकटु अथवा अप्रिय जान पड़े। साधारणतया दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए,जैसाकि मनुष्य स्वयं अपने साथ किया जाना पसन्द करता है। बचपन में परस्पर मित्रों में कहा-सुनी हो जाने पर उसकी शिकायत यथासम्भव गुरुजनों से नहीं करनी चाहिए। अपने से कोई भूल हो जाने पर क्षमा मांग लेना गौरव की बात है।

आपस में की जानेवाली हँसी का बुरा नहीं मानना चाहिए,

वरन् उसे सहजभाव से हँसी में ही ग्रहण करना चाहिए। यदि कोई क्रोध में हो अथवा कटु भाषण करे तो कुछ देर तक मौन रह जाना शिष्ट व्यवहार कहलाता है।

कुछ अधिक घनिष्ठ मित्रों के साथ व्यवहार अधिक स्पष्ट हो जाता है। उस अवस्था में उन मित्रों के हित की भावना भी रहती है। अतः उनके किसी अनुचित काम को देखकर समझाने की इच्छा स्वभावतः बलवती हो उठती है। चूंकि मीठा सत्य बोलना उचित है, अतः जो-कुछ भी समझाना हो उसे ऐसे शब्दों में कहना चाहिए कि सुननेवाले को बुरा न लगे।

मित्रों के निजी जीवन और आन्तरिक मामलों में बिना पूछे बोलना उचित नहीं है। सलाह-सम्मति भी तबतक देनी चाहिए जबतक जिसे सलाह दी जा रही है, वह व्यक्ति उकता न जाय। हठ कभी और कहीं भी करना उचित नहीं हैं, क्योंकि कोई कारण नहीं है कि हमारी सारी बातें सदा-सर्वदा मानी जायं। अतः सत्य का आग्रह भले ही किया जाय, हठ नहीं करना चाहिए।

मित्रों से कुछ आशा करने से पूर्व यह देख लेना चाहिए कि हम उनके साथ कितना और कैसा व्यवहार कर पाते हैं। उदाहरणार्थ, प्रायः यह आशा की जाती है कि एक मित्र अपनी सारी बातें अपने मित्र को बता दे; किन्तु यह भी देख लेना चाहिए कि वह स्वयं अपनी कितनी बातें अपने मित्र को बता पाता है।

एकान्त में मित्रों के साथ चाहे जैसा व्यवहार हो, अन्य व्यक्तियों के सम्मुख आदरपूर्ण ही होना चाहिए। मित्रों के दोषों की अपेक्षा गुणों को अधिक प्रकाशित करना उचित है। दोषों की चर्चा एकान्त में करनी चाहिए।

: ११ :

अपरिचितों के साथ

अपरिचितों के साथ सदैव नम्रता का व्यवहार करना चाहिए। यदि कोई सड़क पर जाता हुआ अपरिचित व्यक्ति मार्ग पूछे तो अत्यन्त सावधानी से उसे मार्ग समझा देना चाहिए, क्योंकि ठीक मार्ग न जानने से अपरिचितों को नवीन नगर में गन्तव्य स्थान खोजने के लिए बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। यदि मार्ग उलझा-सा हो और मार्ग बतानेवाले के पास समय हो तो उसे कुछ दूर तक साथ जाकर मार्ग दिखा देना चाहिए। अपरिचितों के साथ, यदि वह अपने से बड़े अथवा बरावर के हों तो, 'आप' सम्बोधन का प्रयोग करना चाहिए। उनके सरलता से मार्ग न समझ पाने पर झुंझलाना या चिढ़ना नहीं चाहिए, वरन् शिष्टता से उत्तर देते रहना उचित है। यदि किसी अपरिचित को मार्ग में कोई शारीरिक कष्ट हो जाय तो उसकी पूरी-पूरी सहायता करनी चाहिए। दुर्घटना का शिकार हो जाने पर हरेक सज्जन का कर्तव्य है कि वह उस व्यक्ति को अस्पताल अवश्य पहुंचा दे तथा उसके निजी जनों को सूचना दे दे। हरकहीं यथासम्भव अपरिचितों की सुख-सुविधा का ध्यान रखना चाहिए।

किसी सवारी में अपरिचित वृद्धों का तो अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। उनकी साधारण सेवा कर देना उचित है। शिष्ट भाषा में बोलना तो अत्यन्त आवश्यक है।

अपने घर पर किसी अपरिचित के आ जाने पर उसे प्रणाम करना तथा उसका साधारण आदर-सत्कार करना उचित है।

उनको अपना परिचय देते हुए उनका परिचय प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए ।

अपरिचित महिलाएं घर में या बाहर कहीं भी मिलें उनके प्रति सदा आदर और नम्रता का व्यवहार करना चाहिए । किसी कारण से भी स्त्रियों के साथ लड़ना-झगड़ना अनुचित है । अपरि-चितों के साथ सदा संयत भाषा में थोड़ी-सी बातचीत करना उचित है तथा उनके निजी जीवन के विषय में पूछताछ करना असभ्यता है ।

: १२ :

मेलों-उत्सवों में

घर में प्रत्येक व्यक्ति का उत्तरदायित्व केवल अपने परिवार और प्रियजनों के प्रति होता है; किन्तु घर से बाहर निकलकर प्रत्येक व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिए कि वह अब एक छोटे-से परिवार का सदस्य न होकर एक समाज का सदस्य है तथा उसके व्यवहार का प्रभाव अन्य लोगों पर भी पड़ता है। यद्यपि परिवार में भी व्यक्ति अपने व्यवहार से अन्य लोगों को प्रभावित करता है, किन्तु वहां सम्बन्ध अधिकतर स्नेह का होता है, जबकि समाज में स्नेह का स्थान अधिकतर व्यावहारिकता ले लिया करती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को समाज के सदस्य होने के नाते व्यवहार करना चाहिए।

मेले, उत्सव आदि सार्वजनिक स्थान होते हैं। ऐसे स्थानों पर जन-साधारण को जाने का अधिकार होता है और उन्हें व्यवस्थित और स्वच्छ रखने का उत्तरदायित्व भी सब लोगों पर होता है। अतः मेलों में चलते-फिरते कोई स्थान गन्दा नहीं करना चाहिए।

मेलों में अधिकतर भीड़ अधिक होती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को सावधानी से बिना दूसरों को धक्का दिये चलना चाहिए। स्त्रियों, बच्चों, वृद्ध और निर्बल व्यक्तियों को आराम से निकल जाने देना चाहिए। मेलों में खेल-तमाशे, दुकानें आदि देखनी तो चाहिए; किन्तु अकारण किसी एक जगह खड़े नहीं हो जाना चाहिए।

दुकानों पर कुछ खाकर पत्ते वहीं नहीं फेंकने चाहिए, वरन् एक स्थान वना लेना चाहिए, जहां वे फेंके जायं और वहां से उन्हें आसानी से उठवा दिया जाय। इसी प्रकार पानी पीकर कुल्हड़ अथवा गिलास का वचा हुआ पानी सड़क पर नहीं फेंक देना चाहिए। आम अथवा केला खाकर उसका छिलका रास्ते में डाल देना अनुचित है। मेले में किसीके वच्चे अथवा अन्य वस्तु के खो जाने पर तत्सम्बन्धी सूचना प्रवन्धकों को दे देनी चाहिए।

आजकल प्रायः उपाहार-गृहों, रेस्ट्रां, कॉफी-हाउस आदि में जाने का प्रचलन हो गया है। आवश्यकता से अधिक देर तक वहां बैठे रहने से अन्य आनेवाले व्यक्तियों को असुविधा होती है। अतः बहुत अधिक देर तक अकारण कॉफी-हाउस आदि में बैठे रहना उचित नहीं है। अपने मित्रगण के साथ अन्य आनेवालों की हँसी करते रहना अशिष्ट व्यवहार है।

उत्सवों में जाने पर सदैव वह स्थान ग्रहण करना चाहिए, जहां से किसीको आपको उठा न देना पड़े। यदि वैठने का प्रबन्ध कुर्सियों पर हो तो सदैव एक किनारे की तथा पिछली पंक्ति की कुर्सी पर बैठना चाहिए, ताकि अन्य आनेवालों को सरलता से बैठने का स्थान मिलता जाय और अव्यवस्था भी न हो। यदि आगे की ही पंक्ति में बैठना हो तो एकदम किनारे की कुर्सी पर बैठना चाहिए, ताकि पीछे आनेवाले उसके वाद रखी कुर्सियों पर बैठते जायं। यदि बैठने का प्रवन्ध फर्श पर हो तो वीच में न वैठकर एक किनारे ऐसे स्थान पर वैठना चाहिए जहां वैठने पर पीछे आनेवालों को सुविधानुसार स्थान मिल सके।

उत्सव का कार्यक्रम जबतक चल रहा हो, शांतिपूर्वक बैठे रहना चाहिए। वीच में उठकर चले जाना असभ्यता है। यदि ऐसा करना आवश्यक हो तो आरम्भ से ही ऐसे स्थान पर बैठना

चाहिए, जहां से विना दूसरों का ध्यान आकर्षित किये आसानी से उठकर चला जाना सम्भव हो। उत्सव के कार्यक्रम के बीच बिना निमन्त्रित किये बोलना, जोर से हँसना, अकारण जोर से बोलना असभ्यता है। बीच में अकारण प्रशंसा करना भी उचित नहीं है। जहां अपने पास बैठे हुए व्यक्ति से बोलने की आवश्यकता हो वहां भी धीरे-धीरे बात करनी चाहिए, ताकि कार्यक्रम में विघ्न न पड़े। बिना वजह और अनावश्यक कटु आलोचना करना अनुचित है।

सभा भंग करने का प्रयत्न करना, वक्ता की हँसी उड़ाना अथवा उसे किसी भी भांति तंग करना असभ्यता है। यदि आपको भाषण आदि मनोरंजक न लग रहे हों तो शांतिपूर्वक बैठे रहना चाहिए। यदि बैठना असम्भव हो जाय तो चुपचाप उठकर चले जाना चाहिए। वार-बार इधर-उधर ताकना, करवटें वदलना, जम्हाई लेना, शब्द करना आदि असभ्यता है

जिस सभा में हम बैठे हों उसके नियमों का भी पालन करना चाहिए।

सभा के अध्यक्ष की आज्ञा के विना सभा में बोलना अनुचित है। यदि बोलने की आज्ञा मिल जाय तो जितना समय मिले उसमें ही अपना वक्तव्य समाप्त कर देना चाहिए तथा किसी भी कारण से हुल्लड़बाजी नहीं करनी चाहिए। अध्यक्ष की आज्ञा का पालन करना उचित है। सभा समाप्त होते ही बाहर निकलने के लिए शीघ्रता करने से अधिक असुविधा होती है। अतः शांतिपूर्वक पहले अपने आगे बैठे हुए लोगों को निकल जाने देना चाहिए।

सिनेमा-हॉल में भी जाते और आते समय इन्हीं नियमों का पालन करना चाहिए, तथा चित्र देखते समय अकारण शोर आदि नहीं करना चाहिए। किसी प्रकार की सम्मति चिल्लाकर

देना अनुचित है। अकारण ताली बजाना अथवा जोर से हँसना आदि अशिष्ट व्यवहार है। टिकट लेते समय पंक्ति में शांति-पूर्वक खड़े होना चाहिए। धक्का-मुक्की करना अत्यन्त अशिष्ट-सा दिखाई देता है। चित्र समाप्त होने पर तुरन्त वहीं खड़े होकर उसकी आलोचना आरम्भ कर देना ठीक नहीं है। पहले चुपचाप सिनेमा-भवन से बाहर आ जाना चाहिए।

दूसरों की सुविधा का ध्यान रखना और सार्वजनिक स्थानों पर समाज के गौरव की सुरक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।

: १३ :

गुरुजनों के साथ

गुरुजनों में मान्य और पूज्य व्यक्तियों की गणना की जाती है। माता-पिता और अध्यापक के अतिरिक्त अन्य मान्य व्यक्ति भी आदर के पात्र होते हैं। उनके साथ आदर-सूचक व्यवहार करना चाहिए। नम्रता और वाणी की कोमलता तो सदैव प्रशंसनीय है; किन्तु गुरुजनों के साथ विशेष रूप से नम्रता का व्यवहार करना चाहिए। कहीं भी गुरुजनों के आ जाने से स्वयं खड़े होकर उन्हें बैठने के लिए स्थान देना और उनके स्थान ग्रहण कर लेने पर ही स्वयं स्थान ग्रहण करना चाहिए। गुरुजन के सम्मुख अनावश्यक रूप से चिल्लाकर बात नहीं करनी चाहिए तथा उनके सामने यदि खड़ा होना हो तो कमर पर हाथ रखकर अथवा मेज पर हाथों के बल झुककर खड़ा नहीं होना चाहिए। यदि बैठे हों तो पैर हिलाते रहना या हिलते-जुलते रहना असभ्यता है। यदि अपने से बड़ों के साथ किसी एक सवारी पर बैठना हो तो उनके बाईं ओर अथवा सामने की जगह बैठना चाहिए। यथा-सम्भव अपने से बड़ों को अपनी दाहिनी ओर बिठाना चाहिए। यदि हम कहीं गाड़ी पर जा रहे हों और सामने से दूसरी गाड़ी पर कोई गुरुजन आ रहे हों और यदि उन्हें या हमें एक-दूसरे से बातचीत करनी हो तो हमें स्वयं उतरकर उनकी गाड़ी तक जाना चाहिए। अगर हम गाड़ी पर जा रहे हों और कोई गुरु-जन पैदल ज़ा रहे हों तो स्वयं उतरकर उनसे प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमारी गाड़ी पर आ जायं और उन्हें यथासंभव

उनके गन्तव्य स्थान तक पहुंचा देना चाहिए।

यदि किसी गुरुजन के साथ एक ही चारपाई पर बैठना पड़े तो उन्हें सदा सिरहाने की ओर ही बिठाना चाहिए और स्वयं पैताने की ओर बैठना चाहिए। जब अपने घर से कोई गुरुजन जाने लगें तो उन्हें द्वार तक पहुंचाने जाना चाहिए। यदि उन्हें बाहर किसी सवारी से जाना हो तो उस गाड़ी का द्वार स्वयं खोलना चाहिए और गुरुजन के गाड़ी में बैठ जाने पर उसका द्वार वन्द कर देना चाहिए। यदि गाड़ी न हो तो भी द्वार तक जाकर पर्दा अवश्य खोल देना चाहिए और तबतक खुला रखना चाहिए जबतक वह व्यक्ति चले न जायं।

यदि कोई व्यक्ति हमसे हमारे घर पर मिलने आवे तो हमें भी उससे मिलने उसके घर पर जाना चाहिए। बड़ों का यदि कोई निश्चित आसन हो, जैसे गुरुजी की कुर्सी, तो उसपर उनकी अनुपस्थिति में भी नहीं बैठना चाहिए।

देश के अथवा धर्म के नेताओं तथा अन्य पुरुषों के प्रति सदैव आदर-भाव रखना चाहिए तथा उनके विषय में बात करते हुए पूज्यभाव रखना चाहिए। यदि किसी विषय में किसी जीवित गुरुजन अथवा मृत महापुरुष से हमारा मतभेद हो तो भी उनके व्यक्तित्व के प्रति सदैव आदरभाव रखना चाहिए।

गुरुजनों की सेवा करना, उनका कोई काम कर देना उचित ही है। यदि हम किसी बड़े व्यक्ति के साथ जा रहे हों और छाते के उपयोग में लाने की आवश्यकता हो तथा छाता एक ही हो तो वह हमें स्वयं ही अपने हाथ में रखना चाहिए तथा इस प्रकार पकड़कर चलना चाहिए कि उनपर छाते ही छाया तो रहे, किन्तु उन्हें छाते की तीलियां न चुभें। यदि कोई गुरुजन कोई काम कर रहे हों और वह हम कर सकते हैं तो हमें नम्रतापूर्वक

उनसे लेकर स्वयं करना चाहिए।

बड़े दो प्रकार के होते हैं--वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध। दोनों ही प्रकार के परिचित तथा अपरिचित अपने-से बड़े सज्जनों के साथ सदैव नम्र एवं शिष्ट व्यवहार रखना चाहिए। यदि वह कोई बात कर रहे हों तो बीच में उन्हें टोकना या अपनी बात सुनने के लिए लाचार करना सर्वथा अनुचित है। उनकी अथवा किसीकी भी बात हो, बात समाप्त होने पर ही बोलना चाहिए। बात काटकर नहीं बोलना चाहिए।

: १४ :

अधिकारीवर्ग के साथ

कर्त्तव्य और अधिकार इन दो शब्दों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है और एक तीसरा शब्द इसके साथ आ मिलता है उत्तरदायित्व। अधिकार का प्रयोग ठीक-ठीक ढंग से किया जाना चाहिए, किन्तु उसमें अधिकारजन्य अभिमान की अपेक्षा कर्त्तव्य-जन्य दृढ़ता तथा जनहित की भावना का होना उचित है। जिस व्यक्ति पर किसी कार्य का भार और उत्तरदायित्व होगा वह व्यक्ति निश्चय ही कुछ-न-कुछ अधिकार का उपयोग भी उस कार्य के सम्पन्न करने में अवश्य करेगा; किन्तु कार्य उस समय तक कुशलता से सम्पन्न नहीं हो सकेगा जबतक कि अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों का भी सहयोग प्राप्त नहीं होगा। अतः अधिकारीवर्ग के प्रति जनसाधारण का दृष्टिकोण सहयोग एवं सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए, न कि विरोध करने की भावना से ओत-प्रोत। अनुशासन और व्यवस्था मानव-समाज के लिए अत्यावश्यक है। और वह तभी रह सकती है, जबकि समाज के सब सदस्य सहयोग की भावना लेकर चलें। उदाहरणार्थ, यदि एक ऐसा नियम बनाया जाता है कि सड़क पर थूकना मना है, तो जबतक सब लोग उस नियम का पालन न करें उसका महत्व कुछ भी नहीं रह जाता है और यदि नियम-भंग करनेवाले व्यक्ति, ज़िन्हें अधिकारीवर्ग दण्ड देना चाहेगा, जन-सहयोग अथवा जनबल पाकर उनके दण्ड देने के अधिकार की उपेक्षा करने लगें तो अनुशासन नहीं रह पायगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुशासन का अर्थ

बुद्धि-विवेक-विहीन आज्ञाकारिता नहीं है, वरन् अधिकारीवर्ग के न्यायोचित अधिकार को स्वीकार करना तथा उनपर विश्वास रखना है। अधिकारी हम कुछ लोगों से भिन्न जाति के लोग तो होते नहीं हैं। हममें से कोई भी व्यक्ति कभी-न-कभी, किसी-न-किसी क्षेत्र में अधिकार प्राप्त कर सकता है, अतः हमें यथासंभव नियमों के प्रति श्रद्धा और अधिकार-प्राप्त व्यक्ति के प्रति आदरभाव रखना चाहिए। वस्तुतः व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और अधिकारी-जनों की आज्ञा मानना परस्पर-विरोधी बातें नहीं हैं। नियमों को स्वेच्छा से पालन करने में ही वास्तविक स्वाधीनता है।

पाठशाला में अध्यापकगण की आज्ञा मानना उचित है और तत्पश्चात् जीवन-क्षेत्र में आकर जब और जहां जिन-जिन अधिकारियों की आज्ञा मानने का नियम हो उसे मानना चाहिए।

राष्ट्र के प्रति सम्मान दिखाने के लिए राष्ट्रीय गान गाते समय खड़ा होना चाहिए। राष्ट्र के किसी भी कर्मठ नेता अथवा अन्य महापुरुष के आने पर स्वागत के लिए खड़ा होना एवं प्रणाम करना उचित है। राष्ट्र के झंडे के प्रति सदैव पूज्यभाव रखना चाहिए। उसका उपयोग साधारण कपड़े के टुकड़े की भांति करना अनुचित है।

मेले, उत्सव, सभा आदि में जहां कहीं पुलिस की व्यवस्था हो वहां नियमानुसार चलना और यथासंभव प्रबन्ध करने में पुलिस की सहायता करना शिष्ट व्यवहार कहलाता है, क्योंकि नगर की पुलिस नगर की सुव्यवस्था के लिए उत्तरदायी है और इस उत्तर-दायित्व को निबाहने के लिए उसे थोड़े-से अधिकार भी दिये गए हैं। अतः उन अधिकारों में हमें अपना विश्वास रखना चाहिए।

: १५ :

खानपान, बातचीत और पोशाक

खान-पान : भारतीय सभ्यता के अनुसार यदि भोजन करते समय कोई अतिथि अथवा मित्र आ जाय तो उससे भोजन करने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। किन्तु यदि वह भोजन कर चुका हो तो उसे बरबस खाने के लिए विवश नहीं करना चाहिए। यदि कोई अतिथि हमारे घर, नगर अथवा देश की रीति के विपरीत कोई काम करे तो उसे हँसकर अप्रतिभ नहीं करना चाहिए। किसी भी अवस्था में अतिथि अथवा अन्य गुरुजन यदि अपने साथ खाना खाने बैठें तो उनसे पहले खाना खाना आरम्भ नहीं कर देना चाहिए। यदि भोजन पृथ्वी पर, आसन अथवा चौकी पर बैठकर भारतीय रीति से किया जा रहा हो तो घर का कोई व्यक्ति स्वयं भोजन परोसे। भोजन पहले अतिथि के सामने परोसना चाहिए। यदि भोजन पाश्चात्य ढंग से मेज पर बैठकर कर रहे हों तो समय-समय पर भोजन की समग्री-सहित पात्र औरों की ओर बढ़ाते रहो, ताकि आवश्यकतानुसार सब लोग भोजन ले सकें। पाश्चात्य ढंग से मेज पर खाना खाते समय छुरी और कांटे का ठीक-ठीक प्रयोग करना चाहिए, अन्यथा हाथ से ही भोजन करना चाहिए। छुरी दाहिने हाथ में और कांटा बायें हाथ में रखना चाहिए। आवश्यकता से अधिक अपने लिए परोसना अनुचित है और जूठन छोड़ना और भी बुरा है।

भोजन इस प्रकार करना चाहिए कि अन्य अपने साथ भोजन करनेवालों से पूर्व हम अपना भोजन समाप्त न कर लें। यथासंभव

उस समय तक नहीं उठना चाहिए जबतक सब लोग भोजन न कर चुके। यदि कारणवश पहले ही उठना हो तो अन्य साथियों से आज्ञा लेकर उठना चाहिए और अपने जूठे बर्तन तुरन्त हटवा देने चाहिए।

भोजन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पास बैठे हुए अन्य लोग भी भोजन कर रहे हैं। अतः यथासम्भव उनकी सुविधा का भी ध्यान रखना जरूरी है।

यदि कोई भोज्य पदार्थ पसन्द न आवे तो उसे, अन्य लोगों के सम्मुख जो भोजन कर रहे हैं, प्रकट नहीं करना चाहिए। वह वस्तु खा सकते हों तो थोड़ी-सी ले लें, अन्यथा चुपचाप रहें, किंतु उसपर नाक-भौं न सिकोड़ें। इससे दूसरों को बुरा लगने की सम्भावना है।

खाने के कमरे में भली प्रकार वस्त्रादि पहनकर तथा बाल बनाकर आना चाहिए। खाने से पूर्व और पश्चात् हाथ-मुंह धो लेना चाहिए।

भारतीय ढंग से भोजन करा चुकने के पश्चात् एक स्वच्छ तश्तरी में पान, सुपारी, लौंग, इलायची आदि मुखशुद्धि के लिए सब लोगों के सम्मुख उपस्थित करनी चाहिए।

मेज पर खाते समय नैपकिन का ठीक उपयोग करना चाहिए तथा भोजन समाप्त हो जाने पर उसे तहाकर मेज पर रख देना चाहिए।

यदि किसीको अपने घर भोजन पर निमंत्रित करना हो तो उसे पहले से लिखित निमंत्रण भेजना उचित है। निमंत्रिण व्यक्ति के उत्तर की प्रतीक्षा करनी चाहिए तथा जिस समय बुलाया हो उस समय घर की बैठक में अथवा बरामदे में रहकर उसकी प्रतीक्षा करनी उचित है। भोजन के पश्चात् 'आपने बड़ी कृपा की

जो आने का कष्ट किया' आदि वाक्यों से उस व्यक्ति को विदा करना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति हमें निमंत्रित करे और हमें जाने की सुविधा न हो तो उसे तुरन्त अत्यन्त शिष्ट भाषा में अपने न पहुंच सकने की सूचना दे देनी चाहिए। यदि जाना ही हो तो भी सूचित कर देना उचित है। भोजन कर चुकने के पश्चात् आते समय गृह-स्वामी का धन्यवाद करना चाहिए तथा विदा मांगकर जाना उचित है। यदि मेज पर भोजन कर रहे हों तो मेज की चादर को गन्दा नहीं करना चाहिए। कमरे में भीतर अथवा बाहर जाते समय द्वार के पर्दों को पकड़कर नहीं चलना चाहिए। भोजन कर चुकने पर हाथ धोकर गीले हाथ तौलिये से पोंछने चाहिए।

बातचीत : जिन व्यक्तियों की पान खाने का आदत हो उन्हें पान की पीक सड़क पर अथवा इधर-उधर दीवारों पर नहीं थूकनी चाहिए। इससे सब ओर गन्दगी फैलती है। पान मुख में रखकर मुंह उठाकर लोगों से, विशेषतया अपने से बड़ों से, बातचीत करना सर्वथा अशिष्ट व्यवहार है। अपने से बड़ों से बातचीत करते समय तो पान अवश्य थूककर मुंह धो लेना उचित है।

बातचीत करते समय सदैव स्वर उतना ही ऊंचा होना चाहिए जितनी आवश्यकता हो। दो व्यक्तियों से बात करते समय इतने जोर से बोलने की आवश्यकता नहीं है जितनी की बीस व्यक्तियों से बोलते समय होगी। बातचीत में स्वर मृदुल और नम्र होना चाहिए। दो-चार व्यक्तियों से बातचीत करते समय यह प्रयत्न न करें कि हम अपनी बात कहते जायं वरन् दूसरों को भी बोलने का अवसर दें तथा उनकी बात भी सुनें।

बातचीत में सदा अपने व्यक्तित्व और अपने परिवार से सम्बन्धित बातें मत करते रहो, क्योंकि उन बातों में सब श्रोता-

गण दिलचस्पी नहीं ले पाते हैं। साधारणतया ऐसी बातें करनी उचित हैं, जिन्हें सब समझें और उनमें दिलचस्पी भी लें। ऐसी बातचीत कभी न करो जिससे किसीका मन दुखी हो अथवा जिससे अपना अहंकार प्रकट होता हो।

बातचीत स्पष्ट स्वर में करनी चाहिए। हँसी-मखौल अच्छा होता है; किन्तु किसी व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य करके हँसी करना अनुचित है। हँसी ऐसी करनी चाहिए, जिससे किसीको बुरा न लगे। यदि कोई हमें लक्ष्य करके हँसी कर रहा हो तो उसका बुरा न मानो वरन् उसे साधारणतया हँसकर ग्रहण करो। यदि उत्तर देना हो तो ऐसा दो कि वह उच्च कोटि के हास्य-रस की झलक दिखाता हो।

व्यंगात्मक बातचीत प्रायः न हो तो अच्छा है और यदि कहीं सुन भी लो तो उसे क्रोध का विषय न बनाकर हँसी में ग्रहण करो। किसीपर व्यंग करना अथवा छींटे कसना बहुत सुन्दर नहीं है; किन्तु यदि ऐसा भी हो जाय तो बुरा मत मानो वरन् हँसकर सरल ढंग से उड़ा दो।

सत्य ही बोलो, किन्तु अप्रिय सत्य यदि अत्यावश्यक न हो तो न कहो। बिना आवश्यकता यथासम्भव अपने से बड़ों के बीच में बोलना अनुचित है। किंतु यदि अपने से छोटा कभी कुछ कहना चाहे तो उसकी बात सुन लो और बहुत अच्छी न होने पर भी उसकी हँसी मत उड़ाओ।

कभी और किसी कारण से ऐसी बात अथवा ऐसी हँसी न करो, जिसे सबके सामने करना अनुचित जान पड़े। बातचीत में आत्मगौरव, सरलता और सज्जनता की छाप होनी चाहिए।

पोशाक : पोशाक सदा सादी, स्वच्छ तथा ठीक ढंग से पहननी चाहिए। जिन वस्त्रों को ठीक-ठीक धारण करना न आता

हो उन्हें न पहनो; किन्तु कोई भी पोशाक बेढंगे तरीके से नहीं पहननी चाहिए।

ऐसी पोशाक, जो बहुत अधिक भड़कीली हो, पहनना उचित भी नहीं है। वस्तुतः पोशाक व्यक्ति के व्यक्तित्व की दर्शक होती है तथा समाज के अन्य व्यक्तियों पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। अतः पोशाक रीति-रिवाज के अनुसार होनी चाहिए; किन्तु किसी भी अवस्था में पोशाक ठीक ढंग से पहनना चाहिए और वस्त्र स्वच्छ होना चाहिए।

दूसरों के वस्त्रों के विषय में आलोचना करना अनुचित है। दूसरों के सम्मुख उन्हींके वस्त्रों की वहुत अधिक बातें करते रहना अथवा अपने वस्त्रों की प्रशंसा करते रहना अनुचित है।

यथासंभव पोशाक मौसम के अनुसार होनी चाहिए। समय और अवसर के अनुकूल पोशाक पहनना उचित है। खेलते समय पहनने योग्य पोशाक और रात्रि के समय दावत में पहनकर जाने योग्य पोशाक में बड़ा भेद होता है। सभ्य व्यक्ति को समयानुकूल पोशाक पहननी चाहिए।

महिलाओं और गुरुजनों के सम्मुख बिना ठीक तरह से पोशाक पहने नहीं आन चाहिए तथा जिस ओर महिलाएं वस्त्रादि बदल रही हों वहां जाना अनुचित है।

बिना बटन लगी हुई कमीज अथवा कोट पहनना उचित नहीं है। यदि कोई वस्त्र कहीं से तनिक-सा फट जाय तो उसे तुरन्त सी लो। फटे वस्त्र को पहनकर कहीं जाना सुन्दर नहीं दीखता है।

सादगी अच्छी है, किन्तु लापरवाही की प्रशंसा नहीं की जा सकती है। किसी भी काम में लापरवाही नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार वस्त्र भी ढंग से पहनने चाहिए। लापरवाही के नाम पर बेढंगे तौर से वस्त्र पहने घूमना सामाजिक दृष्टि से अनुचित है।

: १६ :

नागरिक के रूप में

नागरिक होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को नगर तथा देश के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझना चाहिए। अतः अनावश्यक गप्प आदि से यथासंभव दूर रहना चाहिए। वस्तुतः नागरिक शांति और सुव्यवस्था के शत्रु वही लोग होते हैं, जो विना गम्भीर विचार किये किसी भी बात को चार आदमियों में बैठकर कह डालते हैं। यही नहीं, कभी-कभी तो गुरुजनों की, शासन-व्यवस्था की अथवा देश की राजनीति की अनावश्यक आलोचना भी विना विचार किये कर डालते हैं, जिसका प्रभाव कुछ अच्छा नहीं होता। अतः नागरिक के रूप में शिष्ट व्यवहार का अर्थ है कि जो-कुछ जनता में अथवा जनमण्डली में अथवा सार्वजनिक स्थानों पर बैठकर कहा जाय वह ऐसा विषय हो जिसपर हम भली प्रकार सोच-विचार चुके हों। किसी प्रकार की सुनी हुई बात अथवा आलोचना पर सहज ही विश्वास कर लेना अनुचित है। यथासंभव अपने (नागरिक के नाते) गौरव की रक्षा करते हुए वातचीत करनी चाहिए तथा जनहित की भावना सदैव हृदय तथा व्यवहार में रखनी चाहिए।

विदेशी लोगों के सम्मुख अपने देश के गौरव की रक्षा करते हुए वातचीत करनी चाहिए तथा उनकी हर प्रकार की सहायता करना तथा उन्हें नगर अथवा देश की प्रमुख विशेषताएं एवं दर्शनोय स्थानादि बताना शिष्ट व्यवहार के अन्तर्गत आता है। उनके देश के विषय में यदि कुछ जानने की इच्छा हो तो उनसे

नम्रतापूर्वक पूछ लेना चाहिए; किन्तु उनके किसो भी रीति-रिवाज आदि की कटु आलोचना करना अनुचित है। उनसे कोई ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए, जिससे उन्हें बुरा लगे। अपने देश के रीति-रिवाज आदि को समझने में उन लोगों की सहायता करनी चाहिए। यथासंभव ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि वे हमारे देश की कुरीतियों आदि की अपेक्षा यहां के गौरव-चिन्हों को अधिक देख सकें।

नागरिक को सदैव सबके साथ सत्य एवं ईमानदारी का व्यवहार करना चाहिए। विदेशियों के साथ तो ऐसा करना और भी अधिक आवश्यक है, क्योंकि व्यवहार ही मनुष्य के व्यक्तित्व को दर्शाता है और न केवल मानव के अपने व्यक्तित्व को वरन् उसकी जाति और उसने देश की संस्कृति को भी दिखलाता है। अतः विश्व में अपना योग्य स्थान पाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति यथासम्भव अन्य देश के वासियों के साथ शिष्ट व्यवहार करे तथा उन्हें अपने देश की सभ्यता, संस्कृति एवं दर्शन-शास्त्र का सुन्दरतम रूप दिखाने का प्रयत्न करे।

यदि नागरिक जीवन में किसीसे नियम का उल्लंघन हो जाय अथवा त्रुटि बन पड़े तो उसका कर्तव्य है कि वह व्यक्ति स्वयं जाकर पुलिस अथवा जिस किसी विभाग से उसका सम्बन्ध हो उसे सूचित कर दे, ताकि नगर की अथवा प्रांत एवं देश की सुव्यवस्था बनी रहे तथा अधिकारीवर्ग का कार्य सरल हो जाय। यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि अधिकारीवर्ग हममें से ही है और उसे किसी प्रकार भी जनता से पृथक् करके देखना अनुचित है। उनका कर्तव्य देश की सुव्यवस्था बनाये रखना है, अतः उस दिशा में उनकी सहायता करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। यदि प्रत्येक

नागरिक अपने कर्तव्य का उचित पालन करता रहे और अपना व्यवहार शिष्ट और सुन्दर रखे तो शासन-व्यवस्था बनी रहेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

: १७ :

अन्य बातें

बालकों के प्रति : बालकों को स्वावलम्बी बनने देना चाहिए। उन्हें अपना काम अपने-आप ही करने देना उचित है। चार या पांच वर्ष की अवस्था के बालक का मुंह धुलाना अथवा उसे कपड़े पहनाना अथवा जूते आदि पहनाना अनावश्यक है। वही बालक शिष्ट व्यवहार करने योग्य हो सकता है, जिसे आरम्भ से स्वावलम्बी बनने का अवसर प्राप्त हुआ हो।

यथासम्भव बालकों को आगन्तुकों को प्रणाम करने का अभ्यास डलवाना चाहिए तथा उसकी प्रत्येक बात ध्यानपूर्वक सुननी चाहिए। किन्तु उसके द्वारा की गई शिकायत पर बिना पूरी बात जाने कुछ कर बैठना उचित नहीं है।

मित्रों अथवा परिचितों से नवीन मित्रों अथवा सम्बन्धियों का परिचय कराते समय उनके बालकों का परिचय कराना भूलना नहीं चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से बालकों में स्वहीनत्व-भावना उत्पन्न हो जाती है। यथाअवसर परिचय दे देने से बालक भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान समझने लगता है। यथासम्भव बड़े लोगों की सभा में बालकों को नहीं ले जाना चाहिए, किन्तु यदि ले भी जायं तो उन्हें बोलने न देना अथवा हिलने न देना अनुचित है। ऐसे अवसर पर उन्हें कभी-कभी बात करने का अवसर देना चाहिए और उनकी बात सब लोगों को सुननी चाहिए। ऐसी बातें, जो उनके सामने करने योग्य नहीं हैं, करना उचित नहीं है, क्योंकि बालक प्रत्येक सुनी हुई बात पर ध्यान देता है और उसे पूरी तरह

समझने का प्रयत्न भी करता है। अतः यह असम्भव है कि आप उसके सामने बातें करें और उन बातों का उसपर प्रभाव न हो।

बालकों के साथ कठोरता का व्यवहार करना अथवा उनसे अशिष्ट भाषा में बोलना अनुचित है। यदि हम बालकों से शिष्ट और संयत भाषा में बोलेंगे तो वह भी उसी प्रकार की भाषा प्रयोग में लाना सीखेंगे।

सुधारने के लिए बालकों को डांटना,अपमानित करना अथवा भय दिखाना अनुचित है। वस्तुतः उन्हें प्यार से समझा देना ही ठीक होता है।

दीनों के प्रति : कहीं किसी भी हीन-दीन निराश्रय व्यक्ति को देखकर उसकी सहायता करनी चाहिए। उसकी हँसी तो किसी भी अवस्था में उड़ाना अनुचित है। यदि कोई अन्धा, हकलाता हुआ, लंगड़ा या अपंग व्यक्ति कहीं मिल जाय तो उसकी नकल करना अथवा उसे चिढ़ाना सर्वथा अनुचित है। यदि उसे किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो तो अवश्य कर देनी चाहिए। किसी भी अन्धे को अन्धा अथवा लंगड़े को लंगड़ा कह-कर पुकारना असभ्यता है। किसी अशिक्षित अथवा गांववाले व्यक्ति को 'गंवार' अथवा 'मूर्ख' कहकर कभी भी नहीं पुकारना चाहिए, वरन् यदि उसकी कोई सहायता हम कर सकते हों तो अवश्य कर देनी चाहिए, जैसे चिट्ठी पढ़ देना अथवा पत्र लिख देना, आदि।

यथासम्भव किसी कुली, मजदूर अथवा गाड़ीवान आदि से पहले ही मजदूरी ठहरा लेना चाहिए, ताकि बाद में झगड़ा न हो। यदि कभी बिना ठहराये भी काम ले लिया जाय तो मजदूरी के लिए झगड़ा करना अनुचित है।

किसी भी अपराध के लिए अपराधी को दण्ड देने की अभि-

लाषा से क्षमा कर देना अधिक अच्छा है। यदि क्षमा-भावना के साथ-ही-साथ मन में अपराधी के लिए हित की भावना रखी जाय तो और भी सुन्दर है।

अपने आश्रितों के प्रति सदैव सदय रहना चाहिए। नौकरों के भोजन तथा विश्राम की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। किसी कारण से खाना खाते हुए नौकर को उठाना नहीं चाहिए। अन्य व्यक्तियों, जैसे धोबी, नाई, कहार आदि से व्यर्थ बातें नहीं करनी चाहिए तथा दूसरों से तथा दूसरों के घरों से सम्बन्धित बातें कभी भी नहीं पूछनी चाहिए। व्यर्थ में अन्य व्यक्ति के निजी मामलों में हस्तक्षेप करना अथवा तत्सम्बन्धी जिज्ञासा करना अनुचित है।

किसीको भी निम्न समझकर उसके साथ ऐसा व्यवहार करना जिससे कि वह निम्न समझा जाय अनुचित है।

मार्ग में कहीं भी केले के छिलके, शीशे के टुकड़े, ईंट, पत्थर, कांटे आदि पड़े देखो तो उन्हें उठाकर एक किनारे कर दो, ताकि मार्ग में चलनेवाले दूसरे व्यक्तियों को उनसे कष्ट न हो।

दान सदैव नम्रतापूर्वक देना चाहिए। दान देकर अभिमान करना अनुचित है।

कभी और किसी कारण से किसी भी मत अथवा सम्प्रदाय के देव-मन्दिर का अपमान करना अथवा उसके नियमों का भंग करना अनुचित है।

मन पर प्रत्येकअवस्था में संयम रखना उचित है। अपने शत्रु की भी लोगों में बैठकर निन्दा करना अनुचित है। यदि सम्भव हो तो उससे एकान्त में मिलकर समझौता कर लो। लड़ाई करने से मेल करना सदैव अधिक श्रेयस्कर है।

यथाशक्ति प्रातः और सायंकाल कुछ देर तक मौन रखना

उचित है।

मृत व्यक्ति का सदैव स्मृति में भी सम्मान ही करना चाहिए। यदि मार्ग में किसी शव को ले जाते हुए लोग दिखाई दें तो मार्ग से एक ओर हट जाना उचित है। यदि सम्भव हो तो कुछ दूर तक शव के साथ चले जाओ। यथासंभव 'मरने' के लिए 'स्वर्ग सिधारना' कहो। किसीकी मृत्यु हो जाने पर शोक होना स्वाभाविक है और किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाने पर तो शोक और भी अधिक होता है; किन्तु उसे चिल्लाकर या रोकर प्रकट करना शोभा नहीं देता है। अतः धैर्य्य रखना उचित है।

यदि किसी मित्र के घर मृत्यु हो गई हो तो शोक प्रकट करने जाना तो अवश्य चाहिए, किन्तु उसे दुःख की गम्भीरता अधिकाधिक दिखाकर और अधिक दुःखी करने की अपेक्षा संसार की नश्वरता समझाकर धैर्य्य धारण करने की शिक्षा देना अधिक उचित है। किसी परिचित के घर मृत्यु हो जाने पर यथासंभव शव के साथ श्मशान तक जाना चाहिए तथा उस परिवार के लिए अपने घर से बनाकर भोजन भेजना चाहिए। उन्हें समझा-बुझाकर प्रेम से भोजन करने के लिए आग्रह करना चाहिए।

यदि कुछ लोग बैठे या खड़े बातचीत कर रहे हों तो उनके बीच में से जाने की अपेक्षा उनके पीछे से जाना ठीक है। यदि उनके बीच में से ही जाना आवश्यक हो तो क्षमा मांगकर जाना चाहिए।

किसी भी व्यक्ति की डायरी अथवा पत्र अथवा अन्य कोई भी कागज आदि बिना उसकी अनुमति लिये पढ़ना अनुचित है।

किसीके घर जाकर उसके घर की वस्तुएं इधर-उधर करना अथवा छूना असभ्य व्यवहार है।

यदि कोई पत्र लिखे तो उसका उत्तर अवश्य देना चाहिए। यदि किसीका कार्य, जो उसने पत्र में करने के लिए लिखा हो, न भी

कर सको तो भी उसे स्पष्ट किन्तु नम्रभाषा में लिख दो, ताकि वह काम होने की प्रतीक्षा न करता रहे।

यदि हमसे किसीको धक्का लग जाय अथवा कोई गिर जाय अथवा किसीका पैर आदि कुचल जाय तो नम्रतापूर्वक क्षमा मांग लेनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति हमें कोई वस्तु दे अथवा हमारा कोई काम कर दे तो हमें उसे धन्यवाद देना चाहिए।

अपने से बड़े लोगों को यदि कोई वस्तु दो तो दाहिने हाथ से दो और यदि उनसे कोई वस्तु लेनी हो तो दाहिने हाथ से ही लो।

यदि किसीसे मिलने जाओ अथवा कोई व्यक्ति मिलने आया हुआ हो तो बार-बार घड़ी मत देखते रहो। यदि समय की कमी हो तो स्पष्ट कह दो; किन्तु विनम्र शब्दों में कहो।

कोई काम करवाने के लिए अपने किसी मित्र पर दवाव डालना अनुचित है और यदि किसी मित्र से कहो भी तो उससे उस काम के न हो सकने पर अप्रसन्न न हो वरन् उसकी परिस्थिति समझने का प्रयत्न करो। अपने निजी काम के लिए यथासम्भव किसी भी मित्र आदि की सहायता न लो वरन् अपनी बुद्धि और कुशलता द्वारा ही अपना कार्य सम्पन्न करने का प्रयत्न करो।

विवेक-बुद्धि, आत्म-गौरव, शान्ति, सत्य और नम्रता-सहित किया जानेवाला व्यवहार अधिकतर शिष्ट ही होता है।

●

युवकोपयोगी अन्य पुस्तकें

१. आत्म-रहस्य
२. संकल्प
३. मानव और धर्म
४. दिव्य जीवन
५. आगे बढ़ो
६. स्वप्न
७. आत्मोपदेश
८. व्यवहार और सभ्यता
९. जीने की कला
१०. शिक्षा का विकास
११. उठो

एक रुपया